R.N.I. No. 2321/57
ओ३म्
रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15
जुलाई 2013
अंक 6

तपोभूमि

मासिक

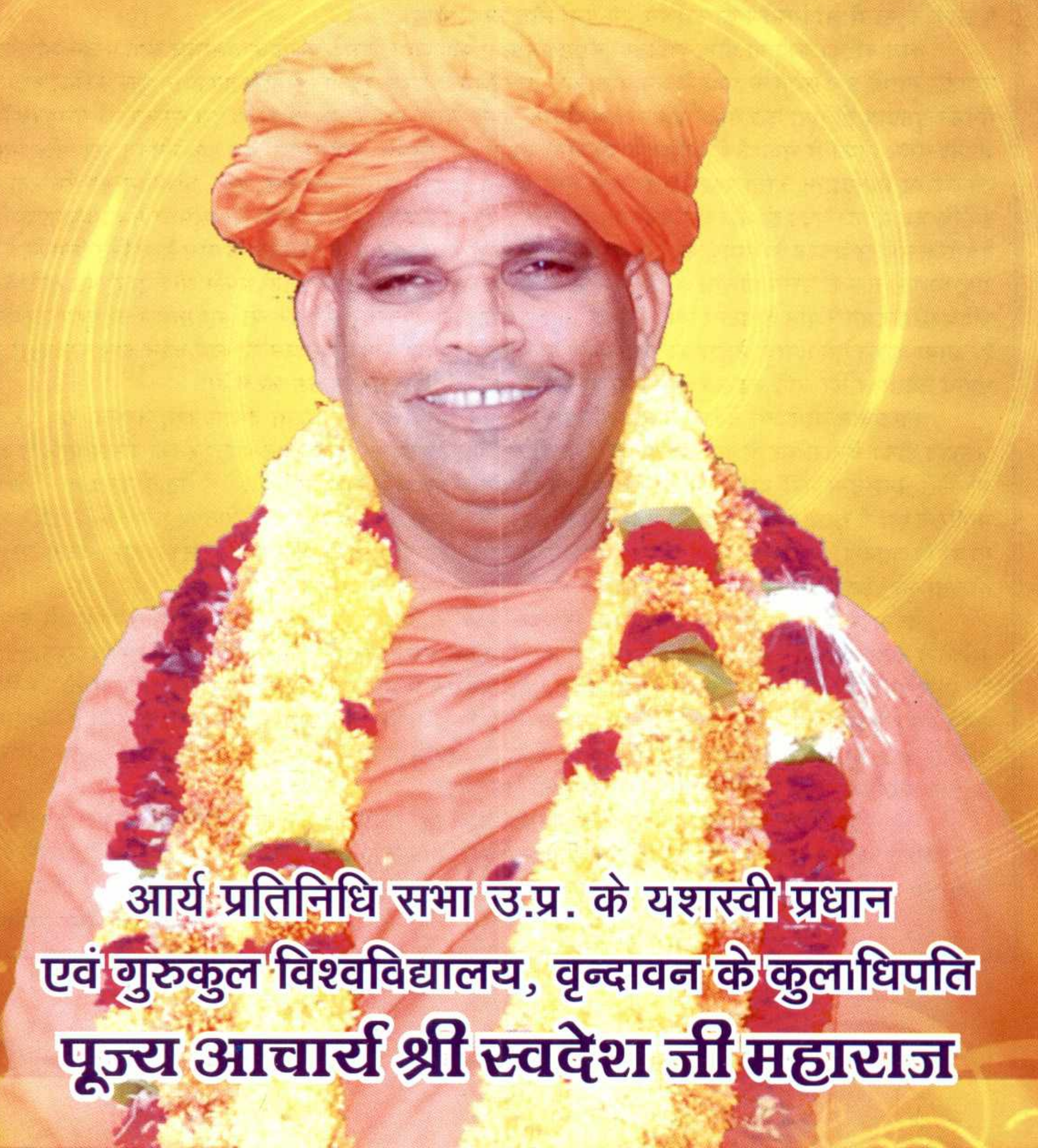

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के यशस्वी प्रधान
एवं गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन के कुलाधिपति
पूज्य आचार्य श्री स्वदेश जी महाराज

पूज्य आचार्य श्री स्वदेश जी महाराज बने आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान (दीर्घ काल के बाद मिला आदर्श नेतृत्व)

पूज्य आचार्य श्री स्वदेश जी महाराज को आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का प्रधान चुने जाने पर आर्यसमाज के कर्मठ जुझारू कार्यकर्त्ताओं को जिस नेतृत्व की खोज थी वह आज उन्हें पूज्य आचार्य जी के रूप में प्राप्त हो गया है। आशा है उनके नेतृत्व में आर्यसमाज का स्वर्णिम युग पुनः लौट कर आयेगा।

काल का चक्र कहो या योग्य व्यक्तियों की उदासीनता कहा जाए जिसके चलते आर्यसमाज रूपी पावन अभियान की बागडोर स्वार्थी भ्रष्ट लोगों के हाथों में अनायास चली गयी जिसके कारण पूर्वजों का सारा तप त्याग धूल में मिल गया। सारा संगठन मृतप्राय हो गया कुछ महर्षि दयानन्द के दीवाने अपने त्याग, तप के बल के कारण इस संगठन को बचा रहे हैं और अपनी लगन निष्ठा से सर्वहितैषी अभियान को आगे बढ़ाते रहे, जिससे आर्यसमाज अब तक जीवित रहा और संसार के उपकार का मार्गप्रशस्त करता रहा है। पर उसमें ऐसा बल न रहा कि शासन प्रशासन उसके अभियान को गंभीरता से ले। क्योंकि जब संगठन सुदृढ़ हो और जन बल साथ हो तभी संसार में आवाज सुनी जाती है। आर्यसमाज सर्वाधिक उपकारी और वैचारिक सम्पन्न संगठन है। समाज की प्रत्येक समस्या का समुचित समाधान आर्यसमाज के पास है। व्यक्ति निर्माण से लेकर राष्ट्र निर्माण तक की उत्तम योजना आर्यसमाज के अतिरिक्त और किसी के पास इतनी सफल और सुव्यस्थित नहीं। वेदों की पवित्र धरोहर हमारे पास है। इतना सब कुछ होते भी हम संसार का उपकार न कर सके जो आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य रहा है। उसका कारण ऐसे तपस्वी नेतृत्व का अभाव रहा है। जिसको आदर्श मानकर संगठन का कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता अपना सर्वस्व न्यौछावर कर आगे बढ़ सके। संगठनात्मक रूप से अपनी शक्ति का उपयोग कर सकें।

निष्ठावान कार्यकर्त्ता वेदना के साथ जीता रहा अपनी सम्पत्तियों को लुटता देखता रहा, तड़पता रहा पर सर्वथा असहाय होकर बेचारा कर ही क्या सकता था? ऐसे व्यक्ति आर्यसमाज के ठेकेदार बन गये, जिनका आर्यसमाज से दूर तक का कोई लेना–देना नहीं था। जिन्हें आर्यसमाज की प्राथमिक जानकारी तक नहीं थी। ऐसे नेतृत्व को देखकर कार्यकर्त्ता मानसिक रूप से इतना पीड़ित हुआ कि सर्वथा निरूपाय और निस्तेज होकर अपने तक सीमित हो गया, उसे महर्षि दयानन्द, गुरुवर विरजानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पण्डित लेखराम, पण्डित गुरूदत्त आदि का बलिदान निरन्तर अशान्त करता था पर करे तो क्या करे? स्थानीय स्तर पर ही लाचार होकर अपने कार्य में तन्मय होकर लग जाता था।

वेदना में डूबा सोचता तो अवश्य था कि क्या महर्षि का मिशन यूँ ही नष्ट हो जायेगा? क्योंकि उसे कोई ऐसा व्यक्तित्व नजर नहीं आ रहा था जो आर्यसमाज में बैठे पदासीन असमाजिक तत्वों से लोहा ले सके। इसे विडम्बना ही कहिए कि आज हमारे विद्वान् केवल मंचों तक सीमित रह गये, कार्यक्षेत्र में यदि गुण्डों से संघर्ष करना पड़ जाए तो उससे वे यह अपने बस की बात नहीं है, यह कहकर किनारा कर जाते हैं। फिर आखिर अपनी जान जोखिम में डालकर इन असमाजिक तत्वों से कौन लड़े? आन्तरिक शक्ति तो सबको प्रिय है लेकिन विधर्मियों से संघर्ष में व्यर्थ की अशान्ति व मुसीबत मोल कौन ले? जब आर्यसमाज की स्थिति बदतर से बदतर होती चली गई।

जब कर्त्ताओं से अपनी माँ आर्यसमाज का यह हाल देखा नहीं गया। तब पूरा प्रदेश पूज्य आचार्य जी की तरफ उन्मुख हुआ सभी ने आचार्य श्री से प्रार्थना पूर्वक विनम्र निवेदन किया कि आज इन विषम परिस्थितियों में आप ही जीवन दे सकते हैं, आपके अन्दर ही वह क्षमता दिखाई देती है जो आर्यसमाज में घुसे घुसपेठियों को खदेड़ सके। विदित रहे कि आचार्य श्री

–शेष कवर पृष्ठ सं.3 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–59 | संवत्सर 2070 | जुलाई 2013 | अंक 6

संस्थापकः
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

जुलाई 2013

सृष्टि संवत्
1960853114

दयानन्दाब्दः 190

प्रकाशकः

सत्य प्रकाशन

आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा (उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेधाव्रत	5–6
योगेश्वर कृष्ण	–पं0 चमूपति	7–8
गीता में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को उसके स्वरूप का बोध	–डॉ0 सोमदेव शास्त्री	9–10
आर्ष पाठविधि की उपयोगिता....	–डॉ0 सुरेन्द्रकुमार आचार्य	11–14
धूर्तजन	–कवि ओमप्रकाशसिंह	15–16
स्वामी जी का पादरियों व मौलवियो....	–खुशहालचन्द्र आर्य	17–19
बलातकार का एक कम शतप्रतिशत वैदिक समाधान	–अचार्य आर्यनरेश	20
भारतवर्ष में इस्लाम और ईसाइयत क्यों फैली	–डॉ0 अर्चनाप्रिय आर्य	21–24
वैदिक विज्ञान का हेलीकाप्टर	–कृपालसिंह वर्मा	25–27
रे युवा! छोड़, दुष्कर्म होड़	–देवनारायण भारद्वाज	29–31
आपके पत्र		32–33
वार्षिक उत्सव		34

❋ ❋ ❋

वार्षिक शुल्क 150/– रूपये   पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1000/– रूपये

वेदवाणी

डॉ0 रामनाथ वेदालंकार

बुढ़ापा भद्र हो, मौतें दूर भागें

जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा।
जरा त्वा भद्रा नेष्टव्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम्।। अथर्व0 3.11.7

शब्दार्थः– हे मनुष्य! (जरायै) दीर्घ जीवन के लिए (त्वा) तुझे (परि ददामि) सौंपता हूँ, (जरायै) दीर्घ जीवन के लिए (त्वा) तुझे (नि धुवामि) क्रियाशील करता हूँ। (जरा) जरावस्था (त्वा) तुझे (भद्रा) भद्र कल्याण (नेष्ट) प्राप्त करायें। (वि यन्तु) दूर हो जायें (अन्ये मृत्यवः) अन्य मौतें (यान् इतरान्) जिन अन्य मौतों को (शतम्) संख्या में सौ (आहुः) कहते हैं।

भावार्थः– हे रोगी! रोग से व्याकुल होकर क्या तू यह सोच रहा है कि अब संसार से जाने का समय आ गया है। ऐसा मत सोच, आशावादी बन। मन में जीने की उमंग जगा, महत्वाकांक्षा कर। वेद कहता है कि तू मरेगा नहीं, डर मत–'न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः' (अथर्व0 8.2.24)। मैं तेरी चिकित्सा कर रहा हूँ, मैं तुझे स्वस्थ कर रहा हूँ। मैं तुझे जरावस्था तक जाने योग्य कर दूँगा, दीर्घ जीवन की घुट्टी पिला दूँगा। तू हाथ–पैर चला, क्रियाशील बन। उदासीनता छोड़, जीवन में रस पैदा कर। स्वास्थ्य के नियमों का पालन कर, व्यायाम कर, प्राणायाम कर। अभी तो तू युवा है, अभी तो तुझे बहुत लम्बी आयु जीना है। मैं भिषक् हूँ, मेरी बतायी हुई औषधियों का सेवन कर और मन में यह विश्वास जगा कि तू स्वस्थ हो रहा है। तू अवश्य स्वस्थ होगा और जरावस्था तक पहुँचेगा।

अरे, तू तो जरावस्था के नाम से चौंक रहा है। क्या तेरे सामने बुढ़ापे का वह चित्र उपस्थित हो रहा है, जिसमें अंग शिथिल हो जाते हैं, हाथ–पैर काँपते हैं, इन्द्रियाँ निस्तेज हो जाती हैं, आँखें देख नहीं पातीं, कान सुन नहीं पाते, मनुष्य पराश्रित हो जाता है। मैं ऐसी जरावस्था की बात नहीं कर रहा हूँ, मैं जो जरावस्था तुझे दिलाऊँगा, वह यौवन को भी मात करनेवाली होगी, वह तुझे सब प्रकार के भद्र प्रदान करेगी। तू सौ वर्ष की आयु तक चल–फिर सकेगा, देख–सुन सकेगा। और जब परमात्मा की गोद में जाना होगा तक हँसते–हँसते जायेगा।

एक बात और अन्तिम मृत्यु के अतिरिक्त मनुष्य के जीवन में सौ मौतें और भी आती हैं। मनुष्य अहिंसा को त्यागता है, तो एक मौत हो जाती है, सत्य को त्यागता है तो दूसरी मौत हो जाती है। इसी प्रकार अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान आदि को त्यागने से भी मृत्युएँ होती रहती हैं। मैं तेरे जीवन से इन सब मृत्युओं को भी दूर कर रहा हूँ। तू मेरे परामर्श के अनुसार चल, मैं तुझे वरदान देता रहूँगा। ❁❁❁

गतांक से आगे–

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

सप्तमः– सर्गः

दर्शं दर्शं दयानन्दो दयामयदयापगाम्।
मन्दाकिनीं नन्दायं दिव्यानन्दं प्रलाषुकः।। 88।।

दिव्यानन्दपदाभिलाषी दयानन्द दयालु ईश्वर की दया की नदीरूप गंगा को देखकर प्रसन्न हुआ करते थे।। 88।।

मंगले कुम्भमेलेऽलं वीक्ष्य संमर्दसंकुलम्।
गंगाकूलमसौ यातश्चण्डिकाचलकाननम्।। 89।।

मंगलमय कुम्भ मेले के समय गंगा के दोनों किनारों को भीड़ से भरा देखकर ये चण्डी पर्वत के जंगल में चले गये।। 89।।

ध्यानचुंचुर्वसँस्तस्मिन् योगाभ्यासपरायणः।
अन्ययोगचणैः साकं मुमुदे ज्ञानचर्चया।। 90।।

उस जंगल में निवास करते हुए योगाभ्यास परायण होकर कभी समाधि में मग्न रहते और कभी अन्य योगविशारदों के साथ ज्ञान चर्चा का आनन्द लूटते थे।। 90।।

तस्मिन् साधुसमारोहे सूक्ष्मेक्षणपरीक्षया।
अन्वैषीत्साधुरत्नानि रत्नकार इवानघः।। 91।।

पवित्र दयानन्द साधुओं के उस मेले में सूक्ष्मदृष्टि से जौहरी की तरह साधुरत्नों को ढूँढ़ रहे थे।। 91।।

आत्मदर्शी तपोवित्तैस्तत्त्वदर्शिभिरुत्तमैः।
महात्ममणिभिर्धीमानालोचिष्ट तपोनिधिः।। 92।।

आत्मदर्शी, तपोनिधि, धीमान् दयानन्द तपोवन, तत्वदर्शी श्रेष्ठ महात्माओं के साथ तत्वालोचन किया करते थे।। 92।।

सम्मेलनसमाप्तौ सन् हृषीकेशमियाय सः।
तत्र शुद्धात्मभिः सिद्धैर्विदधे योगसाधनम्।। 93।।

कुम्भ समाप्त होने पर ये हृषीकेश को गये और वहाँ पवित्रात्मा योगियों के साथ योगासाधन करने लगे।। 93।।

एकाकी कर्हिचिच्छान्ते कान्तारे शान्तिसागरः।
समाहितमनाश्चक्रे समाधिं तत्त्वलोचनः।। 94।।

शान्ति-सागर, तत्वदर्शी दयानन्द कभी कभी अकेले एकान्त कान्तार में समाधि लगाया करते थे।। 94।।

गिरिवास्तव्यसाधुभ्यां संस्तुतो वर्णिनात्र सः।
पश्यन् पार्वतसौन्दर्यं जगाम टिहरीं पुरीम्।। 95।।

ये हिमालयवासी दो साधु एवं एक ब्रह्मचारी के साथ परिचित होकर उन्हीं के साथ पर्वत के सौन्दर्य का निरीक्षण करते हुए टिहरी जा पहुँचे।। 95।।

विश्रुता साधुमिर्याऽभुन् मण्डिता राजपण्डितैः।
तस्यां बहुश्रुतैर्वासं वितेने तत्त्वविद् यतिः।। 96।।

टिहरी राज-पण्डितों और श्रेष्ठ साधुओं से मण्डित होने के कारण विख्यात थी। इस नगरी में बहुश्रुत विद्वानों के साथ यतिवर तत्ववेत्ता दयानन्द रहने लगे।। 96।।

पण्डितेन स निमन्त्रितो गृहं।
भोजनाय बटुना यतिर्ययौ।
मांसराशिमवलोक्य विस्मित-
स्स्वथलं लघु ततो निवृत्तवान्।। 97।।

एक पण्डित के निमंत्रण पर ब्रह्मचारी के साथ दयानन्दजी भोजन के लिये उसके घर गये। वहाँ मांस की सामग्री देखकर ये विस्मित होकर झट घर लौट आये।। 97।।

स्वामिनं विनयवान् द्विजोत्तमो-
दुःखितःपुनरुपेत्य साग्रहम्।
भोक्तुमार्तथत मांसभोजनं
राधितं तव कृते वदन्निति।। 98।।

विनयी ब्राह्मण दुःखी होकर पुनः स्वामीजी के पास आया और आग्रहपूर्वक बोला कि स्वामिन्! आप ही के लिये तो मैंने मांस आदि बनवाया है, इसलिये आप भोजन के लिये चलिये।। 98।।

मांसभक्षणमहो द्विजस्य ते
साम्प्रतं न विधिनिन्दितं हि तत्।
ग्लानिकृन्नु पललं विलोकने
रोचतां तदशनं कथं नु मे।। 99।।

तब स्वामीजी ने कहा कि अहो द्विज! ब्राह्मणों के लिये मांसभक्षण योग्य नहीं है। शास्त्र में

-शेष पृष्ठ सं. 19 पर

गतांक से आगे–

योगेश्वर कृष्ण

श्री कृष्ण की बसीठी (दूतकर्म)

लेखकः पं० चमूपति

श्री कृष्ण की यह भर्त्सना सुन दुर्योधन सभा से उठ गया। इस पर श्री कृष्ण ने अपने कुल का उदाहरण देकर कहा–"हमारे यहाँ कंस ऐसा ही कुलांगार था। हमने सारे कुल की रक्षा के लिए उस एक दुराचारी को मार डाला। यही उपाय दुर्योधन का करना उचित है। उसे दुःशासन, कर्ण और शकुनि–सहित पाण्डवों के हवाले कर देना चाहिए। क्या इस एक के लिए सारे क्षत्रिय–वंश का नाश कर दिया जायगा?"

धृतराष्ट्र ने विदुर को भेजकर गान्धारी को बुलवाया और उससे दुर्योधन को समझवाना चाहा, परन्तु उस हठी ने माँ की बात पर ध्यान ही न दिया।

श्री कृष्ण के आने से पूर्व ही दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासन उन्हें बन्दी कर लेने के मनसूबे बाँध रहे थे। अब उन्होंने अपने विचार को क्रियारूप में परिणत करना चाहा। इसकी भनक सात्यकि के कान में पड़ गई। उसने हृदिक के पुत्र कृतवर्मा से, जो था तो वृष्णि परन्तु दुर्योधन की ओर से आगामी युद्ध में सम्मिलित होनेवाला था, कहा–सेना तैयार कर लें। तत्पश्चात् सात्यकि ने यह सूचना श्री कृष्ण को दी, तो वे हँस दिये। धृतराष्ट्र पास खड़ा था। श्री कृष्ण ने उससे कहा–"मैं चाहूँ तो दुर्योधन को अभी बाँध लूँ। मुझे अकेला न समझिये। परन्तु ऐसा करना अधर्म है। मैं दूत हूँ, अधर्म न करूँगा। दुर्योधन अपना बुरा कर रहा है। अच्छा, जो इसे अच्छा लगे वह करे।"

यह कहकर श्री कृष्ण सभा से चल दिये। राजा लोग भी रथ तक उनके पीछे–पीछे गए। रथ में बैठे हुए कृष्ण पर धृतराष्ट्र ने फिर विवशता प्रकट कर क्षमा चाही। श्री कृष्ण ने कहा–"हाँ, आपका, भीष्म, द्रोण और शल्य आदि का जो पक्ष है, वह तो सभा में ही स्पष्ट हो गया था। आप सब तो युद्ध के विरोधी हैं, परन्तु दुर्योधन आपके वश में नहीं, यह दुःख की बात है।"

श्री कृष्ण सभा में उठकर फिर अपनी फूफी के पास गए। पृथा ने कहा–"युधिष्ठिर को संदेश देना–'यह समय दया का नहीं। सब कालों में अहिंसा क्षत्रिय का धर्म नहीं। तू राजा है। राजा काल का कारण है। वह जैसा चाहे समय को ढाल सकता है। उसका बाहुबल पीड़ितों की रक्षा करने के लिए है। स्वयं दीन बन भिक्षा माँगने के लिए नहीं। और तो और, इतना ही देख ले, 13 वर्षों से मैं औरों के टुकड़ों पर जी रही हूँ। यह वृत्ति कृपणता की है। तुझे जन्म देकर इस अवस्था में रहूँ? तू क्षत्रिय है, लड़! बाप–दादा की आन को डुबो नहीं। अर्जुन पुत्र से कहना–क्षत्राणी जिस दिन के लिए पुत्र–प्रसव की पीड़ा सहती है,

वह दिन आ गया है। भीम से कहियो–यह समय प्रीति का नहीं। नकुल–सहदेव से कहना–बल पराक्रम से जीते हुए भोग ही क्षत्रियों के लिए विहित हैं। द्रौपदी से कहना–बेटी! तूने अपने कुल की आन के अनुरूप कठोर तप किया है। मुझे राज्य के चले जाने का इतना दुःख नहीं, पुत्रों के वनवास का इतना दुःख नहीं, जितना दुष्ट दुःशासन द्वारा तुझ नाथवती को अनाथा कर एक–वस्त्रा दशा में ही सभा में लाने और वहाँ पर अश्लील कटाक्ष किये जाने का है। अर्जुन और भीम का बल उसी अपमान के लिए प्रतिशोध के लिए है। अच्छा, कृष्ण! पाण्डवों से कहना–माँ सकुशल है। तुम्हारा कुशल चाहती है, कृष्ण! मेरे बेटे तेरे पास धरोहर हैं, उनकी रक्षा करना!''

पृथा से विदा हो श्रीकृष्ण उपप्लव की ओर चले। रथ में जहाँ सात्यकि को बिठाया, वहाँ कर्ण को भी साथ ले लिया। उससे कहा–''संभवतः आपको पता होगा कि आप वास्तव में सूत के पुत्र नहीं। आप कुन्ती के कानीन पुत्र हैं। शास्त्रों के अनुसार कानीन भी पुत्र ही होता है। यदि आप आज पांडवों के साथ होते तो राज्य के अधिकारी आप थे। युधिष्ठिर आपसे छोटे हैं। दुर्योधन की ओर से अब आप अपने भाइयों का ही खून करेंगे? फिर यह भी आप जानते हैं कि विजय पांडवों की होनी है। अर्जुन–सा बहादुर इस ओर कौन है?''

कर्ण ने कहा–''मैं अपने जन्म को भी जानता हूँ, यह भी जानता हूँ कि कौरवों का पराजय ही होना है। इनके चिह्न ही ऐसे हैं। परन्तु अब तो मैं सूतों में मिलकर सूत हो ही गया। मेरा विवाह सूतों में हुआ। पुत्र–पौत्र हो गए। अब इस कुल को कैसे छोड़ सकता हूँ? दुर्योधन की ओर भी आज नहीं हुआ। उसने मेरा सम्मान उस समय किया था, जब पाण्डवों ने मुझे सूत कहके दुत्कारा था। इस समय तक जिस दुर्योधन का कृपा–पात्र बना रहा, कड़ा समय आने पर उसे छोड़ दूँ? लोग कहेंगे, डर गया। अब मुझे अपनी वर्तमान अवस्था में ही रहने दीजिए।'' यह कह कृष्ण से गले मिलकर वह लौट गया।

श्री कृष्ण की बसीठी सफल नहीं हुई। यदि कृष्ण का कहना मान लिया जाता तो भारतवर्ष का उस समय के पीछे का इतिहास किसी और प्रकार से लिखा जाता। तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि कृष्ण के दूत बनकर जाने का कुछ भी लाभ नहीं हुआ। लाभ बहुत हुआ, यद्यपि वह लाभ नहीं जो कृष्ण चाहते थे। शान्ति–स्थापन से उतरकर कृष्ण का कर्तव्य था अपने पक्ष का नैतिक (सदाचार की) दृष्टि से पोषण करना, सो उन्होंने पूर्णतया तय कर लिया। इनके भाषण का उत्तर किसी से बना ही नहीं। दुर्योधन को भरी सभा में डाँट आए। उसके अपने पक्ष के राजाओं ने भी उसकी नैतिक दुर्बलता का जान लिया। धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, शल्य आदि ने तो स्वीकार भी कर लिया कि दुर्योधन वृथा हठ कर रहा है। यही कौरव–दल के मुख्य योद्धा थे। अपने पक्ष को नैतिक दृष्टि से खोखला और निराधार जानते हुए वे जिस उत्साह से लड़ेंगे, वह भी स्पष्ट है। गान्धारी ने इस मर्म को समझा था। उसने दुर्योधन को समझाते हुए कहा था–'इन द्वेध–ग्रस्तों की सहायता पर निर्भर न कर!' भीष्म–द्रोण ने स्वयं कृष्ण के चले जाने पर भी उसे यही मन्त्रणा दी कि श्री कृष्ण की बात को मान ले। इससे स्पष्ट है कि कृष्ण की बात का प्रभाव इन प्रमुख वीरों

–शेष पृष्ठ सं. 24 पर

गतांक से आगे–

गीता में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को उसके स्वरूप का बोध

लेखकः डॉ0 सोमदेव शास्त्री, मुम्बई

निष्काम कर्म (कर्म योग) :–

गीता यह संदेश दे रही है कि दोनों ही स्थिति (अर्थात् फल कम और अधिक मिले) ये मानसिक दु:ख और कष्ट के कारण हैं जो अन्य कार्य करने में विघ्न हैं। इसलिये प्रत्येक कर्म को अपना कर्तव्य समझकर करना चाहिये। कर्म उसके वश में अधिकार क्षेत्र में है। यदि पुरोहित 'यज्ञ' कराना अपना धर्म या कर्तव्य समझकर करता है और दक्षिणा प्रभु की इच्छा, या उसका दिया प्रसाद समझकर स्वीकार कर लेता है तो थोड़ी कम दक्षिणा मिलने पर दु:खी नहीं होगा और अधिक मिलने पर ज्यादा खुश नहीं होगा क्योंकि फल (दक्षिणा) के मिलने में अनेक कारण हैं यजमान का सामर्थ्य होना, उसकी उदारशीलता का होना, पुरोहित के कार्य से प्रभावित होना, तथा किसी मानसिक विघ्न और बाधा का न होना आदि अनेक कारण हैं जिन पर पुरोहित का अधिकार नहीं है। इसलिये गीता सन्देश दे रही है कि मनुष्य को अपना पूरा ध्यान योग कर्म की तरफ ही लगाना चाहिये। इसीलिये इसे 'कर्मयोग' का निष्काम कर्म कहते हैं। अपना धर्म या कर्तव्य समझकर कर्म करना चाहिये।

कर्मयोग का प्रभाव:–

इसी के विषय में गीता में कहा है कि हे अर्जुन! **कर्मयोग** में स्थित होकर, कर्म के फल की आसक्ति को छोड़कर, कर्म की सिद्धि या असिद्धि अर्थात् फल के कम या अधिक मिलने की दोनों ही अवस्थाओं में मन की अवस्था सम अर्थात् समान रहे, एक जैसी रहे इसी को योग कहते हैं। निष्काम कर्म करनेवाला व्यक्ति कभी दु:खी नहीं होता है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि फल की आकांक्षा को छोडकर अपने कर्तव्य कर्म को ध्यान में रखकर तू युद्ध कर। इस विषय में कहते हैं कि हे अर्जुन! सुख दु:ख को, लाभ–हानि को, जय और पराजय को एक समान समझकर युद्ध के लिये तैयार हो जा, इस तरह तुझे पाप नहीं लगेगा। अर्थात् अनुकूल या प्रतिकूल कैसा भी फल मिले पर तुम दु:खी नहीं होगे। इसलिये निष्काम भाव से तुम युद्ध करो। इस प्रकार कर्मयोग के द्वारा भी दु:खी न होकर युद्ध करना चाहिये यह सन्देश श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इन श्लोकों के द्वारा दिया है।

स्थितप्रज्ञ के लक्षण:–

गीता के द्वितीय अध्याय के 54वें श्लोक से लेकर 72वें श्लोक तक **'स्थितप्रज्ञ'** के बारे में बहुत ही सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कर्मयोग की चर्चा करते हुए कहा कि कर्मयोग के द्वारा निष्काम कर्म के द्वारा मनुष्य की बुद्धि में स्थिरता रहती है उसकी मानसिक बेचैनी या चंचलता समाप्त हो जाती है। तब अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा कि 'हे श्रीकृष्ण! जो व्यक्ति स्थिर बुद्धिवाला

है जो स्थितप्रज्ञ है जो समाधिस्थ है वह कैसा होता है, वह कैसे बोलता है कैसे बैठता है और कैसे चलता है अर्थात् उसका व्यवहार कैसा होता है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि ''हे अर्जुन! जब मनुष्य अपने मन में उत्पन्न होनेवाली सारी कामनाओं, इच्छाओं को त्याग देता है और अपने आपसे ही अपने मन में (जैसी स्थिति हैं उसमें) सन्तुष्ट रहता है तब वह **स्थितप्रज्ञ** (स्थिर बुद्धिवाला) कहलाता है। जिसका मन दु:खों में बेचैन नहीं होता है, सुखों की लालसा नहीं रखता, जो राग, भय और क्रोध से मुक्त है वही स्थिर बुद्धिवाला मुनि कहलाता है।

राग, भय और क्रोध:–

अर्थात् जब भी व्यक्ति किसी भी विषय के प्रति आसक्त होगा उसके प्रति उसका राग होगा तो उसे हमेशा भय लगा रहेगा कि कोई इसमें बाधा न डाल दे और यदि किसी ने बाधा डाल दी तो तुरन्त उसे क्रोध आयेगा और क्रोधी व्यक्ति कभी शान्त या स्थिरमति नहीं हो सकता। जहाँ राग या आसक्ति हैं वहीं भय और क्रोध होता है अत: जहां राग नहीं है अनासक्ति हैं वहां भय और क्रोध भी नहीं होगा और क्रोधरहित व्यक्ति ही शान्त, धीर और स्थिरमति रह सकता है। क्रोध व्यक्ति का विनाश कर देता है। मनुष्य के क्रोध का कारण भी कामना या आसक्ति है। इस विषय में गीता में लिखा है कि जब मनुष्य इन्द्रियों के विषयों का बार–बार ध्यान करता है तो उनके प्रति उसकी आसक्ति बन जाती है और उसको प्राप्त करने की कामना जागृत होती है और यदि कामना में थोड़ा सा विघ्न आया तो उसे क्रोध आ जाता है। क्रोध में व्यक्ति भूल जाता है, भ्रमित हो जाता है और उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। स्मृति खो बैठता है और स्मृति के बिगड़नेसे उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है उसका विनाश भी हो जाता है। क्रोध में व्यक्ति अपने, पराये, छोटे–बड़े पिता, पुत्र, गुरु, शिष्यादि के सम्बन्ध को भूल जाता है, परिणाम यह होता है कि वह कुछ का कुछ कह डालता या कर डालता है और यही उसका विनाश है।

योगी और भोगी के दिन रात:–

गीता में लिखा है कि हमें इन्द्रियों से विषयों को भोगना तो है किन्तु जब इन्द्रियों से विषयों को भोगने में खतरा प्रतीत होने लगे अर्थात् विषयभोग, आत्मिक उन्नति में बाधा डालने लग जाय तब जैसे कछुआ अपने अंगों को सब ओर से सिकोड़कर (संकुचितकर) के अपने खोल के अन्दर खींच लेता है उसी प्रकार जब कोई व्यक्ति (अपनी आत्मा की अनवति के समय) इन्द्रियों को अपने विषयों से खींच लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। संयमी व्यक्ति सांसारिक विषय वासनाओं और प्रलोभन के प्रति आसक्ति रहित हो जाता है। भौतिक सुख सुविधाओं के प्रति वह सो जाता है उसमें उसका मन नहीं लगता है उसके लिये रात हो जाती है। जिस के लिये भौतिकवादी लोग दिन में जाग रहे हैं जिनको प्राप्त करने के लिये भाग रहे हैं। संयमी व्यक्ति अपनी आत्मिक उन्नति के लिये हमेशा जागता रहता है।

–शेष पृष्ठ सं. 27 पर

आर्ष–पाठविधि की उपयोगिता और प्रासंगिकता

लेखकः आत्मप्रकाश आचार्य, अलियाबाद, मं. शामीरपेट, जि0 रंगारेड्डी (आं प्र0)

1. आर्ष–पाठविधि से अभिप्राय

लगभग 130 वर्ष पूर्व, आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अध्ययन–अध्यापन के लिए एक पाठविधि की रूपरेखा प्रस्तुत की, जिसे उन्होंने नाम दिया–'आर्ष–पाठविधि'। यहाँ आर्ष शब्द के दो अर्थ हैं 1. 'ऋषि' अर्थात्, ईश्वर और 'आर्ष' अर्थात् ईश्वर प्रोक्त तथा ईश्वरविषयक। वह पाठ–विधि जिसमें ईश्वर प्रदत्त वेदों का और ईश्वर–प्राप्ति–विषयक अध्ययन–अध्यापन कराया जाता है। 2. ऋषि अर्थात् मन्त्रार्थद्रष्टा विद्वान् अथवा वेदानुकूल विविध विद्याओं के उपदेष्टा विद्वान्, ऐसे ऋषियों के विविध विद्याविषयक ग्रन्थों का अध्ययन–अध्यापन जिस पाठविधि में कराया जाता है, उसे आर्ष–पाठ–विधि कहते हैं। महर्षि ने इस पाठविधि को सार्वभौमिक रूप से सदा–सर्वदा के लिए उपयोगी माना है। क्योंकि यह एक सनातन पाठविधि है। इसके द्वारा महर्षि का महान् लक्ष्य था–सारे संसार में सनातन एकमत 'वेदमत', सनातन एक धर्म 'वैदिकधर्म', सनातन एक भाषा 'संस्कृत भाषा' की स्थापना करके सारे संसार को एक परिवार के समान बनाना और सारे लड़ाई–झगड़ों, मतभेदों, कुरीतियों–अन्धविश्वासों, अन्यायों–अत्याचारों को दूर करके सुख–शान्तिमय बनाना। महर्षि ने इस पाठविधि को सर्वाधिक उपयोगी और जनहितकारी माना है।

1. ''सर्वज्ञः (ईश्वरः)'' आर्याभिविनय 2.30; यजु. 17–17;
2. ''मन्त्रार्थद्रष्टा विद्वान् विद्याप्रकाशकः'' (ऋग्वेद 1.66.2)
   ''सर्वविद्याविद् वेदोपदेष्टा'' (ऋग्वेद 1.31.1)।

आज कुछ लोग आर्षपाठविधि के वास्तविक एवं पूर्ण स्वरूप को तथा महान् उद्देश्य को न समझपाने के कारण इस पर शंकाएं करते हैं और वर्तमान संदर्भ में इसे अनुपयोगी, अप्रासंगिक एवं अव्यावहारिक कहते हैं। संक्षेप में आर्ष पाठविधि पर आपत्तिकर्त्ता जनों की निम्नलिखित चार मुख्य आपत्तियां हैं–

1. महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत पठन–पाठन विधि पाश्चात्य पद्धति की पाठविधि की अपेक्षा कम मनोवैज्ञानिक एवं कम महत्त्व की है।
2. वर्तमान नवीन विषयों की दृष्टि से वह अपूर्ण है। महर्षि के बाद अनेक नये विषयों का अध्यापन होने लगा है।
3. वर्तमान भौतिक एवं वैज्ञानिक संदर्भों में वह अनुपयोगी और अप्रासंगिक है।

4. उसे महर्षि के अनुयायियों और आर्यसमाजों द्वारा यथावत व्यवहार में नहीं लाया जा सका है। इससे सिद्ध होता है कि वह अव्यावहारिक है।

2. महर्षि द्वारा पर्याप्त चिन्तन के बाद आर्ष–पाठविधि का प्रवर्तन

इस सम्बन्ध में सबसे पहले जो ध्यान देने की बात है वह यह है, कि महर्षि ने अपने जीवन के जो भी लक्ष्य निर्धारित किये थे, जो मान्यताएं निर्धारित की थीं, जो आर्ष पाठविधि और उसमें पठनीय–अपठनीय ग्रन्थों का निर्णय किया था, वह सब पर्याप्त चिन्तन तथा अपने गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती से विचार विमर्श के बाद किया था। वह सब न तो अविचारित रूप से किया गया था और न केवल भावुकता में आकर। गुरु विरजानन्द सरस्वती से अध्ययन करने के उपरान्त महर्षि ने कई वर्ष तक प्रत्येक विषय पर चिन्तन किया। अनेक आर्ष और अनार्षग्रन्थों का अध्ययन कर उनमें पठनीय और अपठनीय ग्रन्थों को छांटा। उसके बाद ही उन्होंने आर्ष–पाठविधि को प्रवर्तित किया तथा पठन–पाठन विधि का निर्देश किया। यह भी ध्यातव्य है, कि महर्षि ने जब आर्ष पाठविधि प्रवर्तित की थी उस समय भारत में दो प्रकार की शिक्षण प्रणालियां प्रचलित थीं– एक अंग्रेजों द्वारा प्रवर्तित पाश्चात्य शिक्षापद्धति, दूसरी पौराणिक पठन–पाठन विधि। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है, कि महर्षि ने उस समय की इन शिक्षाप्रणालियों पर गम्भीरता एवं दूरदर्शिता से विचार किया था। आर्ष–पाठविधि को उपयोगिता–अनुपयोगिता प्रासंगिकता–अप्रासंगिकता, व्यावहारिकता–अव्यावहारिकता को तुलनात्मक रूप से भलीभांति परखा था। विस्तृत और गम्भीर चिन्तन के बाद उन्हें आर्ष–पाठविधि ही सर्वाधिक उपयोगी प्रतीत हुई थी। महर्षि के स्ववर्णित वृत्त से इसकी स्पष्ट जानकारी मिलती है–

''मैंने अपने घर में कुछ वेद का पाठ और विद्या भी पढ़ी। फिर नर्मदातट में दर्शन शास्त्रों को पढ़ा। फिर मथुरा में श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती दण्डी जी से पूर्णव्याकरणादि विद्याभ्यास किया, जो कि बड़े विद्वान् थे। उनके पास रहके सब शंका समाधान किए। फिर मथुरा, आगरा नगर में दो वर्ष तक स्थिति की। वहां ऋषि–मुनियों के सनातन पुस्तक और नवीन पुस्तक भी बहुत मिले। उनको विचारा। फिर ग्वालियर में स्थिति की। वहां भी जो–जो पुस्तक मिला उनका विचार किया। ऐसे ही देश–देशान्तर में भ्रमण किया। जहां–जहां जो–जो पुस्तक मिला, उनका विचार किया। जहां–जहां मुझको शंका रह जाती थी उनका स्वामी जी से उत्तर यथावत् पाया। फिर पुस्तकों को देख एकान्त में जाके विचार किया। अपने हृदय में शंका और समाधान किये''। (ऋ. द. प. वि. भाग 1, पृ. 36)

इस प्रकार पर्याप्त चिन्तन–मनन के उपरान्त महर्षि ने आर्ष–पाठविधि को प्रस्तुत करते हुए उसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में ये घोषणाएं की थीं–

(क) ''सो यह ठीक–ठीक निश्चय हृदय में भया कि वेद और सनातन ऋषि मुनियों के शास्त्र

सत्य हैं, क्योंकि इनमें कोई असम्भव वा अयुक्त कथा नहीं है। जो कुछ है उन शास्त्रों में सत्य पदार्थ विद्या और सब मनुष्यों के वास्ते हितोपदेश है। और इनके पढ़ने से बिना मनुष्य को सत्य-सत्य ज्ञान कभी न होगा। इससे इनको अवश्य सब मनुष्यों को पढ़ना चाहिये। और जिनको दूर छोड़ने को कहा कि इनको न पढ़े न पढ़ावे, न इनको देखे। क्योंकि इनको देखने से वा सुनने से मनुष्य की बुद्धि बिगड़ जाती है। इससे इन ग्रन्थों को संसार में रहने भी न दें, तो बहुत उपकार होगा"। (ऋ. द. प. वि , भाग 1, पृ. 37)

(ख) "जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य-विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है, वही देश सौभाग्यवान् होता है।" (स. प्र. समु. 3)

(ग) "वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।" (आर्यसमाज का तीसरा नियम)

(घ) "विशेष करके आर्यवर्तवासी मनुष्य जब तक सनातन संस्कृतविद्या न पढ़ेंगे, सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग, एक परमेश्वर की उपासना न करेंगे...... तब तक इनको सुखलाभ होना बहुत कठिन है, अन्य देशवासियों को भी।" (ऋषि दयानन्द पत्र-विज्ञापन, भाग 1, पृ. 243)

(ङ) "अपना हाल अन्यथा होने का यही कारण है, कि जिसको ऊपर लिख चुके, वेद-विरुद्ध चलना।" (वही पृ. 243)

(च) "मेरा पूर्ण विश्वास है, कि यदि देश में सभ्यता का सूर्य चमके और वेदों का सत्यज्ञान फैले तो अज्ञानी भारत का अन्धकार, जिसने जनता को ऐसी अधोगति में डाल दिया है, एक दिन अवश्य दूर हो जायेगा।" (वही पृ. 19)

(छ) "भला! वेदादि सत्यशास्त्रों को माने बिना तुम अपने वचनों की सत्यता और असत्यता की परीक्षा और आर्यावर्त की उन्नति भी कभी कर सकते हो?" (स. प्र. समु. 11)

(ज) "आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।" (स. प्र. समु. 3)

(झ) "ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों को इसलिए पढ़ना चाहिए कि वे बड़े विद्वान्, सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्पशास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपातरहित है, उनके बनाए हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं।" (स. प्र. समु. 3)

(ञ) ऐसे दर्जनों वचन हैं, जिनसे महर्षि की वेदों और आर्षग्रन्थों के प्रति सत्यनिष्ठा प्रकट होती है। उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया था, कि भारतीय समाज और देश का कल्याण तथा उन्नति आर्षग्रन्थों के अध्ययन से ही हो सकती है। वेदोक्त विषयों के प्रति सत्यनिष्ठा के लिए यह उद्धरण उल्लेखनीय हैं-

"मैं सिवाय वेदोक्त सनातन आर्यावर्तीय धर्म के अन्य सोसायटी, समाज वा सभा के नियमों

को न स्वीकार करता था, न करता हूं, न करूंगा। क्योंकि यह बात मेरे आत्मा की दृढ़तर है। शरीर–प्राण भी जायें, तो भी इस धर्म से विरुद्ध कभी नहीं हो सकता।'' (ऋ. द. प. वि 1, 317, 318, कर्नल अल्काट और मैडम ब्लेवेट्स्की, अमेरिका को लिखा पत्र)।

इन सब सन्दर्भों से स्पष्ट होता है कि महर्षि ने पूर्ण विचार–मनन के बाद आर्ष पाठविधि को प्रस्तुत करने का निश्चय किया था और उनके चिन्तन में सभी पक्ष विचाराधीन थे। उन्होंने इस विधि की प्रशंसा भी गद्‌गद भाव से की है–

''जितनी विद्या इस रीति से बीस वा इक्कीस वर्षों में हो सकती है, उतनी अन्य प्रकार से शतवर्ष में भी नहीं हो सकती।'' (स. प्र. समु. 3)

(अ) पाश्चात्य शिक्षापद्धति और उसके दुष्परिणाम

अंग्रेजों ने अपने शासन काल में पठन–पाठन की भारतीय पद्धति को निहित राजनैतिक और धार्मिक स्वार्थ के कारण बदल डाला था। ''फूट डालो और राज करो'' की कूटनीति के अन्तर्गत वे भारतीय धर्म, निष्ठा और राष्ट्रभक्ति की भावना को नष्ट करना चाहते थे। उसके स्थान पर भारतीयों में वैमनस्य और ईसाइयत का बीज बोना उनका लक्ष्य था। शासन के बल पर ऐसा उन्होंने किया भी। उत्तर–दक्षिण, आर्य–द्रविड़ आदि का भेदभाव उत्पन्न किया। ईसाइयत का विस्तार किया। महर्षि ने देख लिया था, कि भारत में पाश्चात्य पद्धति से शिक्षा प्राप्ति के कारण धर्म, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, स्वदेशप्रेम सब कुछ लुप्त हो रहा है और भारतीय राजनैतिक गुलामी के साथ–साथ बौद्धिक गुलाम हो रहे हैं। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में ब्राह्मणसमाजियों की समीक्षा करते हुए इस प्रकार के दुष्परिणामों का उल्लेख किया है। आर्षग्रन्थों के अध्ययन–अध्यापन को वे कितना लाभप्रद मानते थे, इसका ज्ञान हमें महर्षि के उन वचनों से हो जाता है, जिनमें अंग्रेज सरकार से उस पाठविधि को प्रारम्भ करने की अपील तो की ही है, परमात्मा से भी उस विषयक कृपा करने की प्रार्थना की है। महर्षि के हार्दिक उद्‌गार देखिए–

''मेरा विज्ञापन है कि आर्यावर्त देश के राजा अंग्रेज बहादुर से, कि संस्कृतविद्या की ऋषि–मुनियों की रीति से प्रवृति करावे। इससे राजा और प्रजा को अनन्त सुखलाभ होगा और जितने आर्यावर्त वासी सज्जन लोग हैं, उनसे भी मेरा यह कहना है कि इस सनातन संस्कृतविद्या का उद्धार करें।''

''सो मैं परमेश्वर से अत्यन्त प्रार्थना करता हूँ कि हे परमेश्वर..... सब जगत् के ऊपर ऐसी कृपा करें, जिससे कि सम्पूर्ण विद्या का लाभ वेदादिक सत्यशास्त्रों का ऋषि–मुनियों की रीति से हो।'' (ऋषि दयानन्द पत्र–विज्ञापन भाग 1, पृ. 40–43)

–शेष पृष्ठ सं. 28 पर

गतांक से आगे–

धूर्त जन

रचयिता: ओमप्रकाशसिंह, सिकन्दराराऊ, जिला–हाथरस (उ० प्र०)

(25)

धूर्तो! तुमने हिन्दुओं का सदा किया अपमान,
मुस्लिम ईसाइयों का मान ही बढ़ाया है।
मुस्लिमों ने अपने लिये देश को बांट लिया,
फिर क्यों तुमने बाप अपना बनाया है।
उनके जो मन में आये करें वो पाक जाके,
यहाँ क्यों हिन्दुओं के रोड़ा अटकाया है।
धूर्तो! तुम्हारा सत्ता भूख से वो उछालते हैं,
तुमसे हिन्दुओं ने सदा ही कष्ट पाया है।

(26)

हे धूर्तो! मनुष्यता के बनते हो ठेकेदार,
मुस्लिम को कांटा लगे आँसु गिराते हो।
मुसलमां! चाहे तो पूरी रेलगाड़ी फूंक दे,
हिन्दू प्रतिक्रिया करे तो हल्ला मचाते हो।
मुस्लिम से कुछ भी कहने में लगती शर्म,
हिन्दू को सारे शान्तिपाठ समझाते हो।
साम्य प्रगतिवादी बनते हो समाजवादी,
कोई बादी बनने में तुम न लजाते हो।

(27)

मुसलमाँ हिन्दुओं की काट–काट फेंके लाश,
उस पै तुम्हारी कोई क्रिया नहीं आती है।
कश्मीर में करे दंगा देश में मचाये शोर,
तब भी कुछ कहने में नानी मर जाती है।
हिन्दू किसी मुस्लिम को कांटा भी चुभादे जरा,
फिर तो सारी रात तुम्हें दर्द सी सताती है।

मुसलमाँ की हिंसा को जरा भी नहीं टोकते,
हिन्द टोकने में जीभ रोक नहीं खाती है।

(28)

धूर्तो! तुम मुस्लिमों से लूटने को वाहवाही,
इसी से ही धूर्तता काम तुम करते हो।
हिन्दू कुछ ना कहेगा मुस्लिम से मिले दाद,
धूर्तता करके भी इसी से नहीं डरते हो।
अपने स्वार्थ हित हिन्दू को बनाते बकरा,
हिन्द को देते पीड़ा नहीं उसे हरते हो।
हे धूर्तो! रहम खाओ छोड़ो धूर्तता के काम,
पाप के घड़े को तुम जल्दी क्यों भरते हो।

(29)

हे धूर्तो! तुम्हें हिन्दू कहाने में भी आती शर्म,
वैसे तुम हिन्दू के बनते पूरे बाप हो।
कहो उसे साम्प्रदायक करते अलोचना,
इन हिन्दुओं को टोकते देते संताप हो।
मुस्लिमों से कुछ भी कह नहीं सकते तुम,
कुछ भी कहने में समझते तुम पाप हो।
ये हिन्दू भाड़ में जाय भारती भी जावे संग,
तुम तो केवल हिन्दू को ही अभिश्राप हो।

(30)

हे धूर्तो! तुम हिन्दू को सिखाते हो मेल-भाव,
मुस्लिम को मेलभाव क्यों नहीं सिखाते हो।
हिन्दुओं के कार्यों में डालते अडंगा तुम,
मुस्लिमों पर अडंगा क्यों नहीं लगाते हो।
हिन्दुओं की बात बात पै देते हो उपदेश,
दूजों को उपदेश क्यों नहीं बताते हो।
सत्ता के ही लालच में बिल्कुल तुम अंधे हुए,
हिन्दू और भारत को नष्ट क्यों कराते हो

-(शेष अगले अंक में)

"स्वामी जी का पादरियों व मौलवियों से सिद्धान्तिक वार्त्तालाप"

लेखकः खुशहालचन्द्र आर्य, महात्मा गांधी रोड, दो तल्ला, कोलकत्ता

चाँदपुर मेला जो 20 मार्च सन् 1876 में भरने वाला था, उसमें शामिल होने के लिए स्वामी दयानन्द 19 मार्च को ही चाँदपुर आ गये और मौलवी व पादरी भी अपने दल-बल सहित बड़ी धूमधाम से आ पहुँचे। दर्शकों की संख्या भी पचास सहस्त्र से ऊपर हो गई थी।

20 मार्च को सबेरे साढ़े सात बजे पण्डित, मौलवी और पादरी सभी सभा मण्डप में आ गये और कुर्सियों पर यथायोग्य बैठ गये। बात की बात में वह विशाल मण्डप दर्शकों से ठसाठस भर गया। उस समय श्री मुक्ताप्रसाद जी ने अपने भाई प्यारेलाल जी की ओर से निम्नलिखित पांच प्रश्न सब धर्मावलम्बियों के आगे रखकर उनका उत्तर माँगा।

(1) सृष्टि को ईश्वर ने किस वस्तु से, कब और क्यों रचा? (2) ईश्वर सर्वव्यापक है या नहीं? (3) ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है? (4) वेद, बाईबल और कुरान के ईश्वर-वाक्य होने में क्या युक्ति है? (5) मुक्ति क्या वस्तु है और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है?

मुक्ताप्रसाद जी जब प्रश्न उपस्थित करके बैठ गये तो थोड़ी देर, इस बात पर ही झगड़ा होता रहा कि पहले कौन बोले! अन्त में पादरी स्काट महाशय उठे और प्रथम प्रश्न पर कहने लगे कि यद्यपि यह निकम्मा प्रश्न है, मेरी सम्मति में इस पर बोलना समय ही गंवाना है, तथापि इसका उत्तर देता हूँ। पादरी महाशय के उत्तर का सार यह था कि ईश्वर ने सृष्टि को नास्ति से बनाया है। उसके बनाने में वर्षों का हमें ज्ञान नहीं। संसार के सुख के लिये सृष्टि रची गई है।

फिर पहले प्रश्न पर मौलवी महाशय ने कहा कि ईश्वर ने सृष्टि को अपने स्वरूप से बनाया है। कब बनाया यह प्रश्न व्यर्थ है। हमें रोटी खाने से प्रयोजन है, न कि यह कब पकी थी इससे। सारी वस्तुयें ईश्वर ने मनुष्य के लिए रची हैं और मनुष्य को अपनी स्तुति कराने के लिए निर्माण किया है।

अपने अपने कथन में पादरी और मौलवी एक दूसरे को कटुवचन कहते रहे। पर जब श्री स्वामीजी महाराज ने बोलना आरम्भ किया तो सबको सम्बोधन करके बोले, "यह मेला सत्य की जिज्ञासा से लगाया गया है। यह सबको निश्चय पूर्वक जानना चाहिये कि विजय सत्य की ही हुआ करती है। हम सबका यह कर्तव्य कर्म है कि परस्पर के मेल-मिलाप से असत्य का खण्डन और सत्य का मण्डन न करें। सत्या सत्य के निर्णय के लिए वैर विरोध छोड़कर सम्वाद करना विद्वानों का धर्म है। कठोर और कटुवचन बोलना सभ्याचार के सर्वथा प्रतिकूल है।

पहले प्रश्न के उत्तर में महाराज ने कहा कि "सृष्टि को परमात्मा ने अव्यक्त प्रकृति से बनाया। वह परमाणु रूप प्रकृति जगत् का उपादान कारण है और आदि तथा अन्त से रहित है। अभाव से किसी वस्तु का भाव नहीं हो सकता। जैसे गुण कारण के होते हैं वैसे ही कार्य के भी हुआ करते हैं। इसलिये यदि जगत्

का कारण नास्ति मानें तो कार्य को भी नास्तिरूप ही मानना पड़ेगा।''

महाराज ने यह भी कहा,''यदि यह माना जाये कि ईश्वर ने सृष्टि को अपने स्वरूप से रचा है तो जगत् भी ईश्वर रूप ही सिद्ध होगा। जैसे घड़ा मिट्टी से पृथक् नहीं हो सकता, ऐसे ही जगत् और ईश्वर भी एक ही ठहरेंगे। फिर तो चोर, हत्यारा और पापात्मा होने का आरोप परमात्मा पर ही हो जायेगा। इसलिये जो लोग जगत् के कारण प्रकृति को परमात्मा से पृथक् नहीं मानते उनका मत प्रमाण-प्रतिकूल और युक्ति शून्य है।

सृष्टि कब बनी, इसका उत्तर भी अन्य मतावलम्बियों के पास नहीं है। हो भी कैसे? जब कि किसी मत को चले अठारह सौ, किसी को तेरह सौ, किसी को सात सौ और किसी को पाँच सौ वर्ष बीते हैं। इसका उत्तर तो हम आर्य लोग ही दे सकते हैं। क्योंकि हमारा ही धर्म सृष्टि के आदि में प्रवृत्त हुआ है। युगों का ब्यौरा वर्णन करते हुए महाराज ने कहा कि प्रत्येक शुभ कर्म में आर्य पण्डित तो संकल्प का उच्चारण करते हैं, उसमें सृष्टि के आदि से आज तक वर्षों, मासों, दिनों और तिथियों की गणना विद्यमान है। उस संकल्प के साथ आर्यजन सृष्टि के जन्म के इतिहास को अनविच्छन्न रूप से ले आये हैं।

सृष्टि के रचने का प्रयोजन वर्णन करते हुए श्री महाराज ने कहा, ''जीव और जगत् का कारण, स्वरूप से अनादि है और कार्य जगत् तथा जीवों का कर्म प्रवाह से अनादि है। जब सृष्टि का प्रलय हो जाता है तो उस समय भी जीवों के कुछ कर्म शेष रह जाते हैं उन कर्मों का फल-भोग प्रदान करने के लिये न्यायकारी ईश्वर सृष्टि की रचना करता है। सृष्टि को रचने की शक्ति ईश्वर में स्वाभाविक है। उसने अपने सामर्थ्य से, इसलिए सृष्टि निर्माण की है कि लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करके सुख उपलब्ध करें

जब महाराज ने अपना कथन समाप्त किया तो उनके पक्ष पर मौलवियों और पादरियों ने कुछ शंकाएँ कीं, जिनका उन्होंने उसी समय सन्तोष जनक समाधान कर दिया।

महाराज ने उत्तर देते समय सारी सभा में सन्नाटा छा रहा था। सभी जन प्रभावित हो रहे थे। ये सब बातें उस सभा के लोगों ने पहले सुनी ही न थी। उनको यह भी ज्ञान न था कि आर्य धर्म में भी कोई ऐसा वीर हो सकता है, जो दूसरे मतवादियों को जीतकर दिखाये। इसलिये दर्शक लोग आश्चर्यमय हो जाते थे। आर्य दर्शकों के हृदय तो प्रसन्नता देवी के क्रीड़ा-केतन बन रहे थे। उस समय, सर्वत्र श्री स्वामी जी का ही यशोगान हो रहा था।

दिन के ग्यारह बजे कार्यवाही समाप्त हुई। सभी मतों के प्रतिनिधि अपने-अपने तम्बुओं में चले गये। फिर दोपहर के पश्चात् एक बजे सभा लगी और सबने मिलकर यह स्थिर किया कि समय बहुत अल्प है, अन्य विषयों को छोड़कर केवल मुक्ति पर ही विचार किया जावे। पर उस समय पादरियों और मौलवियों में से कोई भी पहले बोलना न चाहता था। उनको यह भ्रम हो गया था कि सबेरे हमारा पक्ष इसलिये निर्बल सिद्ध हुआ कि हम पहले बोले थे।

जब कोई न उठा तो महाराज ने उठकर कहा, ''मुक्ति छुट जाने का नाम है। जितने भी दु:ख हैं उनसे छुटकर सच्चिदानन्द परमात्मा की प्राप्ति को सदानन्द में रहना और फिर जन्म-मरण में न गिरना मुक्ति है। स्वामी जी ने यहाँ मुक्ति की अवधि बताना कोई जरूरी नहीं समझा वैसे मुक्ति की अवधि 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष की होती है। इसके पीछे महर्षि कारण यह बतलाते हैं कि मुक्ति शुभ कर्मों का फल है। जब शुभ कर्म करने की कोई अवधि या सीमा होती है तो फल की भी कोई अवधि या सीमा होनी चाहिए।

महर्षि बताते हैं कि ''मुक्ति का पहला साधन सत्याचरण है, दूसरा वेद-विद्या का ठीक रीति से लाभ करना और सत्य का पालन करना है। तीसरा सत्पुरुषों और ज्ञानी जनों का सत्संग करना। चौथा योगाभ्यास द्वारा अपनी इन्द्रियों और आत्मा को असत्य से निकाल कर सत्य में स्थापन करना। पांचवां ईश्वर की स्तुति करना, उसकी कृपा का यश वर्णन करना और परमात्मकथा को मन लगाकर सुनना। और छठा साधन, प्रार्थना है। प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए, हे जगदीश्वर कृपानिधे! हमारे पिता! मुझे असत् से निकाल कर सत् में स्थिर करो। अविद्यान्धकार और अधर्माचरण से पृथक् करके ज्ञान और धर्माचरण में नियुक्त करो। जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त कर अपार दया से मोक्ष प्रदान करो।

इस प्रकार महाराज ने नाना युक्तियों से अलंकृत भाषण किये। फिर कुछ परस्पर समालोचना के अनरूप सायंकाल का कार्य समाप्त हो गया।

इस लेख के लिखने का प्रयोजन मेरा यह है कि उस समय महर्षि के पाण्डित का लोगों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था। उनके आकर्षित व्यक्तित्व, मधुर वाणी और समझाने की सरल शैली से लोग इतना अधिक प्रभावित होते थे कि वे गहन से गहन विषय को भी आसानी से समझ लेते थे। इसीलिए उनके व्याख्यानों में बहुत भीड़ जुड़ा करती थी और उनकी बातें सुनकर लोग बड़े प्रसन्न होते थे। उस प्रभाव का अब हम अभाव देखते हैं। ❁❁❁

पृष्ठ सं. 6 का शेष-

मांसभक्षण की निन्दा है। मांस के देखने से ही घृणा होती है, फिर उसका खाना कैसे अच्छा लग सकता है॥ 99॥

निशम्येमां वाणीं मुनिनिगदितां ब्रह्मकुलजो,
मुनेराहारार्थं फलविपुलमन्नं प्रहितवान्।
प्रवृत्तिं मांसाशे द्विजकुलवराणामपि नृणां,
विलोक्योद्विग्नोऽभूद्द्विजकुलमणिर्ब्रह्मणि रत:॥ 100॥

पश्चात् ब्राह्मण ने स्वामी जी की वाणी सुनकर उनके लिये पर्याप्त फलादि भेज दिये। श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भी मांस भक्षण में प्रवृत्त देखकर द्विजकुलावतंस, ब्रह्मरत दयानन्द बहुत ही खिन्न हुए॥ 100॥

❁❁❁

।। 'बलात्कार का एक कम शतप्रतिशत वैदिक समाधान'।।

(ईश्वर का सर्वत्र विश्वास, फांसी का दण्ड व परस्पर भाई, बहन, बेटी की मानसिकता तथा बालीबुड की अश्लीलता पर लगाम)

लेखकः आचार्य आर्यनरेश वैदिक गवेषक, सिरमौर, (हि० प्र०)

नारी विश्व जननी है परमपिता परमात्मा ने वेद में ''स्त्री ही ब्रह्मा बभूविथ'' कहकर उसे अपने पश्चात् संसार का सर्वोच्च मान देते हुए ब्रह्मा का स्थान दिया है, एवं अपने शरीर को ढककर रखते हुए स्वगुणों के प्रकाश करने का उपदेश किया है। प्रथम विश्व मानव संविधान कर्त्ता 'महर्षि मनु' ने नारियों की मातृवत पूजा करते हुए दिव्य समाज के निर्माण की कामना की है। प्रसिद्ध सुराज्य निर्माता महामंत्री 'चाणक्य' मातृशक्ति की पूजा व उनकी लाज की सुरक्षा हेतु सदा सचेत रहने की शिक्षा देता है। चाणक्य नीति में महिलाओं की सुरक्षा हेतु लिखते हैं कि 'नष्टा निर्लज्जाश्च कुलांगना'' अर्थात् कुलीन नारियों की सुरक्षा का सबसे बड़ा साधन उन्हें अपनी लाज की सुरक्षा करना है। सूत्र 126 में वे लिखते हैं कि योगी महाज्ञानी विरक्त लोग किसी नारी के शरीर को देखकर उसे मात्र माँस हड्डी का अपने शरीर के समान एक हाड़-मांस का पिंजर ही समझते हैं परन्तु ऐसी दृष्टि सबकी नहीं होती अतः उसे अपने दिव्य शरीर को ढककर रखना चाहिए। सचरित्र, समय व सुरक्षित राज संस्थापक चाणक्य नीति कहती है कि वारांगना यदि लज्जा छोड़ देगी तो नष्ट हो जायगी अर्थात् उसका धंधा समाप्त हो जायगा परन्तु कुलांगना यदि लज्जा छोड़ देगी तो भी वह अपना सर्वस्व नष्ट कर लेगी। आचार्य 'चाणक्य' स्वरचित कौटिल्य अर्थशास्त्र में 'कुलीन धार्मिकी सुवस्त्रा' नारियों की बुरी निगाह से बिना कुछ छेड़-छाड़ के केवल गलत ढंग से छूने मात्र पर उस व्यक्ति का अंगूठा काटने का विधान करते हैं। परन्तु इसके साथ-साथ अकुलीन चंचल धर्महीन नारियों को मृत्युदण्ड व चरित्रहीन पुरुषों को अग्नि पर बिछाये गए लोहे के पलंग पर जिन्दा जलाने का विधान भी आचार्य मनु करते हैं। एक बलात्कारी की अपनी माता-बहन अथवा पुत्री भी एक नारी ही होती है परन्तु वह प्रायः उनके साथ ऐसा नहीं करता क्योंकि उसके मान में वे मात्र 'स्त्री' नहीं एक माँ बहन व पुत्री का संस्कार रूपी स्थान रहता है। यह संस्कार ही उसे ऐसे कुकर्म से बचाता है परन्तु इसके न रहने पर वह पतित भी हो सकता है। समाज में बढ़ते बलात्कारों का सबसे बड़ा कारण नारियों के प्रति पुरुषों की नवनिर्मित विकृत मानसिकता का संस्कार है जो पहले नहीं था। अत्यंत दुःख का विषय है कि वर्तमान के समाज में लड़कियां का अन्य लड़कों के प्रति भाई आदि का रिश्ता नहीं एवं लड़कों व पुरुषों का उनके प्रति अपनी बहनों के समान रिश्ता नहीं। दोनों मात्र नर-नारी का मित्रतापूर्ण सम्बन्ध चाहते हैं। दुर्भाग्य का विषय है कि वर्तमान के सिनेमा अथवा सीरियल के

-शेष पृष्ठ सं. 28 पर

भारतवर्ष में इस्लाम और ईसाइयत क्यों फैली? और वैदिक धर्म क्यों लुप्त हुआ?

लेखिका: डॉ0 अर्चनाप्रिय आर्या, ऊँचागाँव, नसीरपुर, जिला–हाथरस (उ0 प्र0)

परमपिता परमात्मा की असीम कृपा से हमें यह मनुष्य का जन्म मिला है। इस मानव जन्म को पाकर हमें यह सोचना चाहिये कि हम इस संसार में क्यों आये हैं? हमें यहाँ आकर क्या करना चाहिये और हम क्या कर रहे हैं? कर्म करने की क्षमता, कर्म करने का बल, किसी योनि में है तो वह मनुष्य योनि में है। सोचने की शक्ति, विचारने की शक्ति, पढ़ने की शक्ति, सुनने की शक्ति, अगर किसी को मिली है तो केवल और केवल मनुष्य को मिली है; इसे पाकर यदि मनुष्य यह नहीं सोचता है तो वह मनुष्य नहीं है–नीतिकार ने बहुत सुन्दर बात कही है–

'येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युः लोके भुविभार भूता मनुष्य रुपेण मृगाश्चरन्ति।।

जो व्यक्ति इस संसार में आकर विद्या को प्राप्त नहीं करते, तप नहीं करते, ज्ञान प्राप्त नहीं करते, और जिसने शील को चरित्र को नहीं बनाया है वह व्यक्ति मनुष्य के रूप में पशुवत् विचरण कर रहे हैं। उनका शरीर तो मनुष्य का है परन्तु उसके कारनामे पशुओं जैसे छोटे हैं। इसलिये मनुष्य जीवन को पाकर सदैव विद्या को ग्रहण करना चाहिये। आचार्य यास्कमुनि कहते हैं–**'विद्याकस्मात्'** विद्या किसे कहते हैं यास्कमुनि इसका उत्तर देते हुये कहते हैं–**'सा विद्या या विमुक्तये''** अर्थात् विद्या वह साधन है जिससे व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त करता है। आनन्द को प्राप्त करता है। वर्तमान में हमारी शिक्षा पद्धति में स्कूलों, कॉलेजों में जो पढ़ाया जा रहा है वह विद्या नहीं है। महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में जिन पाँच क्लेशों का उल्लेख किया है मनुष्य जीवन की सफलता में जो क्लेश बाधक हैं उसमें सबसे पहला क्लेश जो बाधक है वह अविद्या है–''अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, उपनिवेश पंच क्लेशा:।''– परमात्मा ने सृष्टि के आदि में इसलिये मनुष्य को अपने को जानने के लिए उद्देश्य को जानने के लिये, अपने लक्ष्य को जानने के लिये वेद का ज्ञान दिया। जैसे कोई व्यक्ति या कम्पनी बाजार के अन्दर अपनी तैयार की हुई वस्तु को भेजती है और हम या आप कोई भी वस्तु खरीदकर लाते हैं तो उसके साथ कम्पनी एक 'बुकलेट' या 'नियमपुस्तिका' देती है। उदाहरण के तौर पर हम गाड़ी खरीदते हैं, घड़ी खरीदते हैं टी.वी. खरीदते हैं, फ्रीज खरीदते हैं तो उस बुकलेट को पढ़कर यह देख लेते हैं कि उपरोक्त वस्तुओं का प्रयोग कैसे करना है? जैसे गाड़ी के ग्रेयर कैसे डालने हैं, उसका ऑयल कितने समय बाद बदलना है, उसे कितनी गति से चलाना है, कब उसकी सर्विस होनी है आदि–आदि बातें हम उसके साथ आई बुकलेट से सीखते हैं।

इसी प्रकार परमात्मा ने हम मनुष्यों को बहुत सुन्दर संसार बनाकर हमारे भोग के लिये, प्रयोग के लिये दिया है साथ ही साथ अपवर्ग के लिये भी। योगदर्शन में इसकी पुष्टि महर्षि पतंजलि ने की है–''**प्रकाश–क्रिया–स्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगायवर्गार्थदृश्यम्**' अर्थात् यह दृश्य जगत् जो मनुष्य के भोग और अपवर्ग (मोक्ष) दोनों का साधक है, सत्, रजः, तमः तीन गुणों से मिश्रित है।

यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में एक मंत्र भी इस बात की पुष्टि करता है–

'**ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किचजगत्यां जगत्**'' अर्थात् हम इस संसार का कैसे भोग करें उसको समझने के लिये इस संसार के साथ इसकी बुकलेट दी उस बुकलेट का नाम ही वेद है। परमात्मा संसार तो बना देता परन्तु उसके साथ उसकी बुकलेट उसका संविधान, उसका सिद्धान्त उसकी थ्योरी देता अर्थात् वेद ज्ञान न देता तो हमारे सामने गाय खड़ी होती परन्तु हमें यह पता नहीं चलता कि यह गाय है और इसके दूध को कैसे निकाला जाय और कैसे प्रयोग में लाया जाय। हमारे सामने पेड़–पौधे, वनस्पतियां, अनेक प्रकार के फल व अनेक खनिज होते परन्तु हमें यह जानकारी नहीं होती कि इन वस्तुओं का प्रयोग हम कैसे करें? यह संसार हमारे लिये दुःखदाई हो जाता, निरर्थक होता इसलिये परमात्मा ने जहाँ सुन्दर संसार बनाकर हमारे लिये दिया उसके साथ ही सृष्टि के आदि में चार ऋषियों के माध्यम से हमें वेदज्ञान की पुस्तक दी। वह ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा हैं जिन्होंने क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की रचना की। इसकी पुष्टि में मानव धर्मशास्त्र प्रणेता महर्षि मनु महाराज कहते हैं–

अग्नि– वायु– रविभ्यस्तु त्र्यंब्रह्म सनातनम्।
दुदोहयज्ञसिद्ध यर्थ ऋग–यजुः साम–लक्षणम्।। मनु0 1। 23।।

अर्थात् वेदों को परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में अग्नि आदि ऋषियों पर प्रकट किया ताकि सब प्रकार के यज्ञों (व्यवहारों) की सिद्धि हो सके। और इसी की पुष्टि में आगे कहते हैं–

सर्वेषांतु नामानि कर्माणि च पृथक्–पृथक्।
वेदशब्देभ्यः एवादौपृथक्संस्थाश्च निर्ममे।। 1। 21। मनु0

अर्थात् परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में वेदों के शब्दों से ही सब चीजों और प्राणियों के नाम और कर्म तथा लौकिक व्यवस्थाओं की रचना की है।''

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि परब्रह्म परमात्मा वेदों का कोश है वही ज्ञान का भण्डार है। योगदर्शन में लिखा है–''**तमनिरतिशयं सर्वज्ञबीजम्**'' अर्थात् उसी ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज है और सांख्य दर्शन भी इसी बात की पुष्टि करता है–

''**स हि सर्ववित् सर्वकर्ता।**'' परमात्मा ही सर्वज्ञ है सृष्टिकर्ता है। उसी को निजशक्ति से वेद की अभिव्यक्ति होती है। न्यायदर्शन का कथन है–''**आप्तोपदेशः शब्दः।**'' वेद परमात्मा का उपदेश है अतः वह शब्द प्रमाण है। वेदान्त दर्शन में महर्षि व्यास का सूत्र है–''**शास्त्रयोनित्वात्।**'' ईश्वर वेद विद्या की

योनि अर्थात् आदिस्रोत है।

भूमण्डल के समस्त धर्मो, सम्प्रदायों और संस्कृतियों में जो अच्छी अच्छी बातें पाई जाती हैं वे सब उन संस्कृतियों के जन्म से सहस्रों वर्ष पूर्व वेदों में उपस्थित थीं। काशी के गंगाजल और गंगोतरी के गंगाजल में कुछ सादृश्य है परन्तु कोई यह नहीं कह सकता कि गंगोत्तरी का गंगाजल काशी से गया है, क्योंकि काशी पीछे की चीज है और गंगोत्तरी पहले की। इस कसौटी पर कसने से पता चलता है कि वेद आदि सृष्टि में दिया हुआ परमात्मा का ज्ञान है क्योंकि सृष्टि की आयु करीब 2 अरब वर्ष होने जा रही है जैसाकि पुरोहित आदि सभी संस्कारों में संकल्प पाठ में इसकी गणना करते हैं और हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि वेद परमात्मा द्वारा आदि सृष्टि में दिया हुआ ज्ञान है वेद से इतर जितने ग्रन्थ हैं उनमें सबसे अधिक पुराना पारसियों का मान्यग्रंथ जिन्दावस्ता है जिसकी आयु मात्र 4600 वर्ष है बौद्धमत के धर्मग्रंथ लगभग 2600 वर्ष पुराने हैं, बाईबिल को अभी मात्र 21 सौ वर्ष हुये हैं और कुरान की आयु लगभग 1500 सौ वर्ष हैं और अन्य जितने भी ग्रंथ हैं वे सभी महाभारत के पश्चात के हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं देख सकते हैं कि वेद से भिन्न जितने भी ग्रंथ हैं उनमें जो भी उत्तम शिक्षायें हैं वे सभी धर्म के आदि स्रोत वेद से ही आई हैं जैसे दीपक, लालटेन, बल्व, मोमबत्ती, रौड आदि में जो भी प्रकाश है उसका मूल स्रोत सूर्य है। अतः वेद माता भाषा सिखाने वाली भी है और आचार सिखाने वाली भी। वेद में भोग और अपवर्ग दोनों की शिक्षा दी हैं। हम उसे ही सत्य मानें जो युक्तियुक्त विज्ञान सम्मत तथा सृष्टि के नियमानुसार हो चाहे वे कहीं हो। केवल कुरान को या बाईबिल को अथवा अपने आचार्य के वचन को प्रमाणिक इस हेतु न मानें कि हमारी परम्परा इसे मानती है, वरन् मनन करें कि सत्य क्या है, उसे पा जाने पर परम्परागत विश्वासों को भी त्याग देने के लिये सदैव तैयार रहें। वेद ऐसे ही हैं तभी वैशेषिक दर्शनकार महर्षि कणाद ने लिखा है–

"बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्वेदे।" अर्थात् वेद के वाक्य बुद्धिपूर्वक हैं, विज्ञानसम्मत हैं जिन्हें आप वैज्ञानिक मन्तव्यों पर कस सकते हैं ऋषि नियमों का विरोध नहीं करते। मनु ने लिखा है– **"यस्तर्केणानुसन्धते स** धर्मो वेद नेतरः।" जो तर्क से सिद्ध हो, वही वेद का धर्म है। आप किसी भी वेदमंत्र को लेकर विचार करके देख लें।

वेद कहता है–

(1) **"दुरितानि परासुव"** दुष्टकर्म दूर हो, फिर **"भद्रं आसुव"** श्रेष्ठ कर्म हमारे समीप आएँ। कारण पूर्व हमें उसके हेतु पात्र बनना आवश्यक है, यदि स्थान न हुआ तो वे रहेंगे कहाँ? अतः पूर्व में दुष्ट संस्कारों को दूर करना ही श्रेयस्कर वेद ने बताया।

(2) पहले **"अभयं मित्रात्"** मित्रों से हम अभय हों फिर **"अभय अमित्रात्"** अर्थात् शत्रुओं से। मित्र शत्रुओं से अधिक भयकारी होता है। कारण हम मित्र से अपना कोई दोष नहीं छिपा सकते और शत्रु से हम सदैव सावधान रहते हैं, अतः उसका भय बहुत कम होता है।

धार्मिक जगत् को दयानन्द यही कहना चाहते हैं कि तुममें पक्षपात हैं तुम एकांगी न्याय के पक्षपाती हो। वेद पक्षपात से शून्य है, उसे मान लेने पर तुम निष्पक्ष हो जाओगे। दया यदि करनी है तो सब पर करो, पक्षपात छोड़कर। अपने भाई को बचाने के लिये दूसरे भाई की अनायास हत्या मत करो। जैसे तुम्हारा भाई तुम्हें प्यारा है उसी प्रकार दूसरे का भी उसे प्यारा है। यह व्यवहार प्रत्येक प्राणी के साथ समानरूप से होना चाहिये। सबसे बड़ा वह नहीं है जो मोक्ष पाना चाहता है अपितु वह है जो दूसरों को मोक्ष दिलाना चाहता है। **"मह्यंदत्वाव्रजत ब्रह्मलोकम्"।** मेरा भाग मुझे देकर ब्रह्मलोक को जाइए। स्वामी दयानन्द को किसी ने कहा था कि तुम व्यर्थ वेदप्रचार के पचड़े में पड़े हो, योग करो तुम्हारी मोक्ष हो जायेगी। स्वामी दयानन्द ने उत्तर दिया कि जब संसार अविद्या की दासता में पड़ा सड़ रहा है तो मुझे मोक्ष कैसे मिल सकता है? महात्मा गांधी के लिये यह कठिन न था कि वे अंग्रेजी शासन की दासता से स्वयं मुक्त हो जाते। इंगलैण्ड का नागरिक बन जाने पर यह ध्येय पूरा हो सकता था, परन्तु महात्मा गांधी ने समझा कि जब तक देशवासी गुलामी हैं मेरी स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं। जनता पुकार कर कहती है कि मेरा ऋण चुकाकर ही तुम ब्रह्मलोक को, स्वर्ग को जा सकते हो अन्यथा नहीं। जिसने रेल का भाड़ा नहीं चुकाया वह रेल से उतरकर घर नहीं जा सकता।

ईश्वर ने तुमको वेद दिये। तुम वेदों को दूसरों को दो। सरकार जो कानून बनाती है वह हर मनुष्य के लिये बनाती है, एक के लिये नहीं, एक दल या समूह के लिये नहीं। एक वर्ग विशेष के लिये नहीं। एक अच्छी सरकार का कर्तव्य होता है कि समस्त राष्ट्र में कोई ऐसा व्यक्ति न रहे जो कानून को न जानता हो और अज्ञानवश कोई ऐसा कार्य न कर बैठे कि उसे नियमोल्लंघन के कारण दण्डित होना पड़े।

कल्पना कीजिये कि सरकार का जो कानून बने उसे कुछ उच्च हाईकोर्टों के जज ही अपने सन्दूक में बन्द करके रखें या कुछ चुने वकील लोग ही उस कानून को देख सकें, शेष जनता उसको न पढ़ पायें, हाँ उस कानून के विरूद्ध आचरण करने पर लोगों को दण्ड अवश्य मिलें तो आप इस प्रकार की सरकार को क्या कहेंगे। क्या यह उचित और सम्मानित सरकार होगी? क्या ऐसी सरकार से जनता का कोई कल्याण होगा? क्या ऐसे जज जनता की श्रद्धा के पात्र होंगे? क्या ऐसे शासन विधान से देश रसातल को न जायगा।

–(शेष अगले अंक में)

पृष्ठ सं. 8 का शेष–

के तथा औरों के हृदय पर यथेष्ट पड़ा। श्री कृष्ण ने कर्ण से भी कहलवा लिया कि विजय अर्जुन की होगी। वस्तुतः स्वयं हस्तिनापुर में अर्जुन की प्रशंसा का वातावरण ही बना दिया। शत्रु के घर में यह अवस्था पैदा कर देना अपनी विजय का रास्ता साफ कर जाना है। कृष्ण की बसीठी का फल मानसिक था। शत्रु के पक्ष के नीचे से जहाँ नैतिक (सादाचारिक) आधा खिसका दिया, वहाँ उनमें परस्पर फूट भी पैदा कर दी। भीष्म, द्रोण आदि एक ओर हो गए, कर्ण, शकुनि आदि दूसरी ओर। फिर भरी सभा में दुर्योधन को बन्दी कर पाण्डवों के हवाले कर देने का प्रस्ताव कर उपस्थित राजाओं के मन में भी यह अंकित कर दिया कि जिस नृपति–पुंगव का वे पक्ष ले रहे हैं, वह है कितने पानी में? उसे बन्दी कर लेने का प्रस्ताव उसकी अपनी सभा में हो सकता है–यही एक प्रस्ताव उसके सारे प्रभाव को मिट्टी में मिला देने को पर्याप्त था। ❁

वृहद विमान शास्त्र में रुक्म विमान

The Helicopter of Vedic Science

वैदिक विज्ञान का हेलीकाप्टर

लेखकः कृपालसिंह वर्मा, शिवलोक, कंकरखेड़ा, मेरठ (उ0 प्र0)

किसी प्राचीन किले के खण्डहरों को देखकर ही उसकी भव्यता का आभास हो जाता है। सन् 1918 में पूज्य स्वामी ब्रह्ममुनि परिब्राजक को राजकीय संस्कृत पुस्तकालय बड़ौदा से महर्षि भरद्वाज द्वारा सूत्र रूप में रचित "यन्त्र सर्वस्व" ग्रन्थ के वैमानिक प्रकरण के कुछ पन्नों की Transcript copy मिली जिसको स्वामी जी ने 'ब्रहद् विमानशास्त्र' का नाम दिया। इस पुस्तक का श्लोकबद्ध भाष्य यति बोधानन्द ने किया था। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद स्वामी जी ने 19-09-1958 ई0 को पूर्ण किया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली ने इस पुस्तक को फरवरी 1959 ई0 को प्रकाशित किया।

रुक्म विमान सुनहरी रंग का हेलीकाप्टर होता है। रुक्म विमान का वर्णन 'वृहद विमान शास्त्र' में पेज 291 से 301 तक किया गया है।

इस सम्बन्ध में महर्षि भरद्वाज का सूत्र है-"रुक्मश्च अ0 2 अधि0 4 सूत्र 6' इस सूत्र की श्लोकबद्ध व्याख्या यति बोधानन्द ने रुक्म विमान का वर्णन किया है।

एवं कृत्वा राजलोहं पश्चात् संग्राहयेद् यदि।
शुद्ध स्वर्णवदाभाति तल्लोहं सुदृढ़ं मृदु।। 10।।

रुक्म विमान की रचना सोने के रंग के राजलोह नामक धातु से करनी चाहिए।

"पीठ विमानस्य कूर्माकारं प्रकल्पयेत्।। 13।।

रुक्मविमान की पीठ कच्छुवे के आकार की बनानी चाहिए।

पश्चात् पीठ के अधो भाग में आठ दिशाओं में गणित की रीति से आठ केन्द्र स्थान बनाये।

"पश्चात अयः पिण्ड चक्राणि अष्ठ केन्द्रेषु युग्मतः।
संयोजयेद् यथैकस्मिन प्रभवेदेक संस्थितिः।। 17।।

गोल कीलों से आठ केन्द्रों में दो-दो करके लोह पिण्ड चक्रों को लगाये जिससे एक की एक में संस्थिति हो अर्थात् पीठ पर दान्तेदार चक्र इस प्रकार लगाये कि एक चक्र को घुमाने पर दूसरा भी घूम जाये।

"तस्मिन् अंगुष्ठ विक्षेपात् अन्तः संचलनं यथा।
तथा भ्रामक चक्राणि कीलकै सह योजयेत्।। 27।।

घूमने वाले चक्रों का सम्बन्ध विद्युत तारों से इस प्रकार करना चाहिए कि अंगूठे से बटन दबाने पर चक्र चलने लगे।

परिभ्रमन्ति वेगेन विद्युत संयोजनात् स्वतः।
पुनः विद्युतनाल मुख्यात चक्रकीलानि यथाक्रमम्॥ 29॥

विद्युत की शक्ति से चक्र वेग से घूमते हैं इसलिए विद्युत उपकरण के मुख से चक्र कीलों को यथाक्रम जोड़ना चाहिए।

"तत् चक्रैताडितः पीठ ऊर्ध्व गच्छति खे क्रमात्।
पीठोपरिस्थचक्रस्तम्भस्थ कील प्रचालनात्॥ 32॥

पीठ पर बने स्तम्भों पर लगे चक्र, कीलों के प्रचलन से वेग से घूमते हैं। इस प्रकार विमान क्रमशः आकाश में जाता है।

विमान को ऊपर ले जाने के लिए आठ दिशाओं में दो दो चक्र लगे होते हैं। इस प्रकार विमान को ऊपर ले जाने के लिए कुल 16 चक्र लगते हैं। यह ही विमान को आकाश में रोके रखते हैं।

विमान के गमन के लिए:-

उपरोक्त 16 चक्रों से विमान आगे नहीं बढ़ता। विमान को चलाने के लिए 6 चक्र लगाये जाते हैं। दो दो चक्रों के तीन जोड़े होते हैं।

कीलकानि यथाशास्त्रं तत्रतत्र नियोजयेत।
चक्र षट्क समायुक्तं कांचकंकुभिः अन्वितम्॥ 46॥
एवं प्रति स्तम्भमूले क्रमात् सम्यक् पृथक पृथक।
चक्राणि स्थापयेत् तेषाम् उपरिष्टात् समन्ततः॥ 55॥

16 चक्र Parallel to the ground होते हैं जबकि गमन करने वाले 6 चक्र Vertical to the ground होते हैं। सभी चक्र विद्युत शक्ति से चलाये जाते हैं।

विमान को किसी भी दिशा में घुमाने के लिए अलग से आठ चक्र बोडी की साइड में लगाये जाते हैं।

यान सम्पेषणार्थाय मार्गान् मार्गान्तरं प्रति।
परिवर्तन आवर्तन कीलकानि यथाक्रमम्॥ 79॥
सन्धारयेदष्टदिक्षु विमानस्य दृढ़ं यथा।
पूर्वा पर विभागेन कर्तव्यं कीलक द्वयम्॥ 80॥

विमान को दिशाओं में घुमाने के लिए अलग से आठ दिशाओं में आठ चक्र लगाये जाते हैं जो दो दो के जोड़े होते हैं। जोड़े का एक चक्र एक दिशा में तथा दूसरा उसके विपरीत दिशा में होता है।

परिवर्तन आवर्तनार्थ प्रश्चात् तस्य यथाविधिः।
पीठमूले चतुर्दिक्षु अर्धचन्द्रकारतः क्रमात्॥ 84॥

एक मार्ग से दूसरे मार्ग के प्रति विमान को प्रेरित करने के लिए परिवर्तन आवर्तन कीलों को लगाये।

विमान की बोडी की साइड में आठ चक्र लगाये जाते हैं। उनमें पूर्व पर एक जोड़ा बनता है। इस प्रकार कुल मिलाकर चार जोड़े बनते हैं। प्रत्येक जोड़ों का एक चक्र Clockwise तथा दूसरा Anti Clockwise घूमता है। इन चक्रों के घुमाने पर ही विमान घूमता है।

वैदिक हेलीकाप्टर तथा आधुनिक हेलीकाप्टर में अन्तर:–

हेलीकाप्टर विमान को आसमान में थामने के लिए आधुनिक हेलीकाप्टर में प्राय: एक ही बड़ा चक्र ऊपर लगता है तथा विमान की बोडी को घुमाने से रोकने के लिए विपरीत दिशा में पूछ पर एक चक्र लगता है। आधुनिक हेलीकाप्टर की बोडी लम्बी होती है।

वैदिक हेलीकाप्टर की बोडी कच्छुवे के आकार की होती है। हेलीकाप्टर को आकाश में रोकने के लिए आठ दिशाओं में आठ जोड़े चक्र लगाये जाते हैं। प्रत्येक जोड़ों का एक चक्र Clockwise तथा दूसरा Anti Clockwise घूमता है।

आधुनिक हेलीकाप्टर को आगे बढ़ाने के लिए पूछ भाग में एक या दो चक्र लगाये जाते हैं। वैदिक हेलीकाप्टर में बोडी के ठीक ऊपर तीन जोड़े चक्र लम्बवत लगाये जाते हैं। प्रत्येक जोड़ों का एक चक्र Clockwise तथा दूसरा Anti Clockwise गति करता है। आधुनिक हेलीकाप्टर में विमान को घुमाने के लिए पूछ भाग में एक या दो चक्र लगाये जाते हैं जबकि वैदिक हेलीकाप्टर में विमान को घुमाने के लिए साइड में आठ दिशाओं में आठ चक्र लगाये जाते हैं। ये भी चार जोड़ों में होते हैं। पूर्व तथा पश्चिम चक्रों से एक जोड़ा बनता है। इसमें भी जोड़े का एक पंख Clockwise तथा दूसरा Anti Clockwise घूमता है।

❋❋❋

पृष्ठ सं. 10 का शेष–

जागरूक रहता है। जिस ओर सांसारिक व्यक्ति सोये हुए हैं जिनका उधर (आत्मिक उन्नति के लिये) ध्यान ही नहीं जाता है यही उनके लिये रात्रि है और संयमी के लिये दिन है।

भौतिकवादी व्यक्ति की क्या स्थिति होती है इस विषय में गीता में लिखा है कि जब मन सांसारिक विषयों में भटकती हुई इन्द्रियों के पीछे जाने लगता है तब वह मनुष्य की बुद्धि को बिगाड़ देता है उसका हरण कर लेता है जैसे वायु पानी में नाव को जहां चाहे ले जाता है। इसलिये जो पुरुष अपने मन को वश में रख लेता है वह लालसा से रहित होकर, ममता से रहित अहंकार की भावना से रहित होकर संसार में रहता है और वह शान्ति को प्राप्त करता है।

इस प्रकार द्वितीय अध्याय में ज्ञानयोग, कर्मयोग, क्षात्रधर्म और स्थितप्रज्ञ का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। ❋❋❋

पृष्ठ सं. 14 का शेष–

इसे महर्षि की दूरदर्शिता ही कहा जाना चाहिए कि उन्होंने अन्य समाज–सुधारों के साथ आर्ष–पाठविधि का भी प्रवर्तन किया। 130 वर्ष पूर्व उन्होंने जो कहा था, वह आज सत्य हो रहा है। इस देश की संस्कृति, सभ्यता, भाषा, इतिहास, स्वदेश प्रेम, नैतिकता, धर्म, सब कुछ लुप्त हो चुके हैं, और हो रहे हैं। हम वैचारिक गुलाम हैं। यदि आर्ष पाठविधि को स्वीकार किया जाता, तो यह दुष्परिणाम नहीं होता। आज भारतीयता यदि कहीं सुरक्षित है तो वह तुलनात्मक रूप से गुरूकुलों और आर्यसमाज की संस्थाओं में है। इसी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर आर्यसमाज के सदस्यों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया था और आज भी राष्ट्रीय महत्व के आन्दोलनों में वे बढ़ चढ़कर भाग लेते हैं। पाश्चात्य पद्धति के स्कूल–कालेजों में इनका सर्वथा लोप हो चुका है। वहां से 'भारतीय' कम मैकाले के मानसपुत्र अधिक निकलते हैं।

–(शेष अगले अंक में)

पृष्ठ सं. 20 का शेष–

कलाकारों ने भी नारी को समाज में पूज्या मां बहन, व बेटी के रूप में स्थापित न करके पुरुषों के मस्तिष्क में चीज, जलेबी, शीलाबाई, हलकत जवानी, फेवीकोल, व मुन्नी बदनाम के रूप में कुसंस्कारित करके नारी के मान को तार–तार किया है क्या नारियों को उनका विरोध न करना चाहिए?

एक नादान से नादान व्यक्ति भी यह जानता है कि अपने पैरों को कांटों से बचाने हेतु धरती पर चमड़ा बिछाने के असम्भव कार्य के स्थान पर जूता पहनना बुद्धिमत्ता है। ठीक ऐसे ही एक थोड़ी सी भी बुद्धि रखने वाली शालीन कुलीन नारी जानती है कि अपने शील को बचाने हेतु संसार भर के पुरुषों को योगी बनाने के असम्भव कार्य के स्थान पर अपने शरीर को शालीनता से ढकना अत्यन्त सरल है। शक्ति विनाश के अश्लील विज्ञापन रोके जाएँ। चाणक्य के कथन पर गंभीरता से विचार हो– कन्या 16 की आयुर्वेद के अनुसार विवाह योग्य है, जो संयम नहीं रख सकते वे विवाह अवश्य करें। ❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती	
डॉ0 श्यामाप्रसाद मुखर्जी	6 जुलाई
मंगल पाण्डे	19 जुलाई
चन्द्रशेखर आजाद	23 जुलाई
लोकमान्य बालगंगाधर तिलक	23 जुलाई
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	29 जुलाई
मुंशी प्रेमचन्द	31 जुलाई

महापुरुषों की पुण्यतिथि	
राजार्षि पुरुषोत्तमदास टंडन	2 जुलाई
स्वामी विवेकानन्द	4 जुलाई

गुरू पूर्णिमा	22 जुलाई
कारगिल युद्ध (1999)	26 जुलाई

"रे युवा! छोड़, दुष्कर्म होड़"

लेखकः देवनारायण भारद्वाज, रामघाट मार्ग, अलीगढ़ (उ0 प्र0)

एक शासनतन्त्र के अन्तर्गत सीमाओं से घिरा भूभाग–देश प्रत्यक्ष दिखाई देता है, जबकि उसकी भाषा, संस्कृति एवं इतिहास से परिलक्षित होती है उसका आत्मा, जिसको हम 'राष्ट्र' नाम से संबोधित करते हैं। बिना भेदभाव के प्रत्येक परिवार उसकी इकाई है। बाल–गोपाल इसकी धरती के खिलते–खेलते और खिलखिलाते हुए फूल हैं, बलवान प्रौढ़ इसके स्तम्भ हैं तो वयस्वी–वयधनी वृद्ध इसकी अनुभूतियों के मस्तक हैं। इस सम्पूर्ण ढाँचे को जीवन्त बनाते हैं इसके युवा। 'युवा' शब्द कितना ही उलट–पलट जाये–सदा जीवन्त बना रहता है। 'युवा' शब्द उलटकर 'वायु' बन जाता है। जैसे वायु प्रवाहित होकर शरीर का आधारभूत प्राण बनती है, वैसे ही युवा 'राष्ट्र' के गतिशील प्राणाधार होते हैं। एक स्थल पर पड़ी गन्दगी से उठती दुर्गन्ध केवल उसी स्थल तक सीमित नहीं रहती, वह वायु के साथ बहकर सर्वत्र फैल जाती है। इसी प्रकार उद्यान के खिले फूलों की सुगन्ध वायु से मिलकर दूर–दूर तक वातावरण को सुरभित कर देती है और सर्वत्र प्राणियों को जीवनानन्द प्रदान करती है। ठीक इसी प्रकार युवजन राष्ट्र के मरुत–अवतार मूलाधार होते हैं।

सशक्त युवाओं के निर्माण की वैदिक ऋषियों की योजना का गुणगान तो हमारे आधुनिक ऋषि डॉ0 ए0 पी 0जे0 अब्दुल कलाम भी करते हैं। माता–पिता–आचार्य यदि सच्चरित्र हों तो राष्ट्र उत्तम बालकों के निर्माण में अवश्य सफल होता है। माता–पिता तो अपने बालकों को तन–मन–मेधा से सबल बनाना ही चाहते हैं, किन्तु वर्तमान में प्राथमिक शिक्षा के आचार्यों को भी तद्नुकूल प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये, जिससे वे माता–पिता गुरू तीनों के दायित्व का निर्वहन करें। आज शिक्षण काल में ब्रह्मचर्य व्रत या संयम पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है, प्रत्युत इसके विपरीत असंयम व ब्रह्मचर्य के स्खलन का वातावरण दूरदर्शन के दृश्यों, चलचित्रों, कथाओं एवं सचलभाष वार्ताओं के द्वारा फैलाया जाता है। न्यूनतम पच्चीस वर्ष तक इन्द्रिय संयम पर ध्यान दिए बिना चरित्र का निर्माण नहीं हो सकता। वर्तमान में ब्रह्मचर्य शब्द उपहास एवं उपालम्भ का पर्याय बन गया है। महर्षि दयानन्द ने बालकों को सचेत करते हुए सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में बताया है–"जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा।" वेदमाता अपने गान्धार स्वरों में राष्ट्र के कुमार वय प्रजाओं को यम नियम का उपदेश (ऋग्वेद 10.135.34) निम्न मंत्रों में यों प्रदान करती हैं–

यं कुमार नवं रथचक्रं मनसा कृणोः।
एकेषं विश्वतः प्रांचमपश्यन्नधि तिष्ठसि।।

यं कुमार प्रार्वतयो रथं विप्रेभ्यस्परि।
तं समानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितम्।।

अर्थात् कुत्सितता को मार देने वाले हे कुमार! इन्द्रिय रूपी नौ द्वारों वाले स्तुत्य व गतिशील शरीर रूप रथ को, जिसमें ऊपर से दिखाई देने वाले चक्र नहीं लगे हैं (फिर भी वह अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या है;) सब ओर आगे बढ़ने वाले इस रथ पर तू इधर उधर न देखता हुआ- लोभ, सौन्दर्य, आकर्षण में न उलझता हुआ आरूढ़ होता है। ध्यान भटकने से रथ का दुर्घटना ग्रस्त होना आशंकित है। यह शरीर रथ तो हमें सुलक्ष्य पर तभी पहुँचायेगा, जब हम विषयाकृष्ट न होते हुए एकाग्रवृत्ति से इस का संचालन करेंगे। इस शरीर रथ के संचालन की शिक्षा माता, पिता व आचार्य से प्राप्त होती है। संसार सागर से पार होने के लिए तथा जीवन यान को शान्ति से प्रचालन हेतु वासना की नहीं प्रभु की उपासना की आवश्यकता होती है। वेदानुयायी शासक का यही कर्त्तव्य होता है कि वह राष्ट्र में ऐसी शिक्षा व्यवस्था करे जिससे माता-पिता एवं आचार्यगण बालकों के चरित्र निर्माण के प्रति सजग-सतर्क रहें। यदि चरित्र होगा तो स्वास्थ्य होगा। स्वस्थ्य शरीर होगा तो पुरुषार्थ के द्वारा धन-वैभव एवं यश भी भरपूर युवाओं को मिलेगा, और राष्ट्र भी विश्व का सिरमौर बनेगा।

प्रोफेसर श्री हम्बीर सिंह मुझे प्रायः मिलते रहते हैं और अपने विदेश-प्रवास के अनुभव बताते रहते हैं। उन्हें 'युगाण्डा' में समृद्ध पद पर नियुक्ति मिली। आलीशान बंगला, नौकर- चाकर, वायुयान से भ्रमण सर्वसम्मान होते हुए भी वे अपने परिवार को उस समय सुरक्षित भारत वापस ले आये, जब उनके बच्चों ने पांचवी कक्षा उत्तीर्ण कर ली थी, क्योंकि इसके बाद सभी बच्चों को छात्रावास में रहकर पढ़ना पढ़ता है, और आत्म संयम की बात तो दूर वे सभी प्रकार के भोग संभोग के लिए स्वतंत्र होते हैं, और उनके शिक्षक-शिक्षिकायें भी इसमें सहभागी बनते हैं। प्रोफेसर हम्वीरसिंह जैसे कितने संस्कारनिष्ठ लोग हैं, जो सुविधाओं को लात मारकर अपने खेतों-खलिहानों में वापस आकर सन्तति के माध्यम से संस्कृति की रक्षा करते हैं। इसके विपरीत पद-प्रतिष्ठा एवं समृद्धि के लिए लोग अपसंस्कृति में डूब जाने को अपना गौरव समझते हैं, और सामान्य विपन्न लोग उन्हीं को आदर्श मानकर अनुकरण करते हैं और शील के स्थान पर अश्लीलता का राज्य बढ़ता चला जाता है। इसीलिए तो महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में सह शिक्षा का निषेध किया है।

अमरीकी ब्यॉय स्काउट्स ने अपने प्रवेश नियमों में कुक्रान्तिक बदलाव करते हुए समलैंगिक युवाओं के प्रवेश की आज्ञा दे दी है। हालांकि यह बदलाव केवल निचले स्तर पर लागू होगा। स्काउट लीडरों की भर्ती में समलैंगिकों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध जारी रहेगा। (हिन्दुस्तान 25.5.13) बाल-समाज सेवी अन्तर्राष्ट्रिय प्रतिष्ठित संगठन का जब यह अधःपतन होगा, तब वासना के बवन्डर से बालकों को कैसे बचाय जा सकता है। तोशा ठक्कर 24 वर्षीय छात्रा की दुष्कर्म के बाद हत्या कर दिए जाने पर आस्ट्रेलियाई नागरिक को 45 वर्ष की सजा सुनाई गई। ब्रिटेन में एक भारतीय महिला से दुष्कर्म के

आरोपी को 11 वर्ष की जेल की सजा सुनायी गयी। पश्चिम की चली हवा ऐसी, पूरब का सूरज भूल गये अपना गौरव भूल गये दुष्कर्मों के फंदे पर झूल गये।

जिस भारत में वेश्यावृत्ति के प्रति घृणा होती थी उनके पुनर्वास के प्रयत्न होते थे, वहाँ खुलेआम युवतियों से बलात्कार होने लगे। दुष्कर्म की होड़ इतनी भयंकर मोड़ ले गयी कि अबोध कुँआरी कन्यायें भी युवकों की हवस की शिकार बनने लगीं। खाकी वर्दी वाले थाने के निकट कूड़ा बीनती निर्धन बालिका को खींच लाते हैं, और उसी जन रक्षा स्थल पर सरेआम अपना मुँह काला करने लगते हैं। मदिरा में मदहोश होकर सगे सम्बन्धी भी इस होड़ को कोढ़ का रूप देते देखे जाते हैं। वे चाहे उच्च पदस्थ राजनेता हों या राजपत्रित अधिकारी–अन्ध भोग लिप्सा में अपनी प्रतिष्ठा को चकनाचूर करने में हिचक नहीं करते। कुछ माह पूर्व दिल्ली में निर्भया के साथ हुई इस पैशाचिकी के अपराधी जब कारागार ले जाये गये तो उनमें से एक को कारागार के कैदियों तक ने ही मौत के घाट उतार दिया। इन अवांछनीय घटनाओं का लम्बा चिट्ठा रोज अखबार आपके सामने लाते हैं। एक ऐसी दुष्कर्म पीड़िता ने जो आदर्श साहसिक समुद्धार का कार्य किया है, उसकी सराहना की जानी चाहिए।

आइये! मिलिये वीरांगना सुनीता कृष्णन से और सुनिये मैसूर में दिए उनके भाषण के कुछ अंश। "मैं यौन हिंसा के खिलाफ काम कर रही हूँ। दरअसल, मैं खुद बचपन में दर्दनाक यौन हिंसा का शिकार हुई थी। मैं मात्र 15 साल की थी, जब आठ दरिन्दों ने मेरे साथ बलात्कार किया। उस घटना ने मेरे अन्दर गुस्सा पैदा किया, ऐसा गुस्सा जिसने मुझे यौन हिंसा के खिलाफ लड़ने की हिम्मत दी। हादसे के बाद दो साल तक मेरा बहिष्कार किया गया, मुझे सबसे अलग रखा गया, मुझे कलंकित बना दिया गया। यह हमारे समाज की विडम्बना है। हमें पीड़ित को और प्रताड़ित करने में महारथ हासिल है। यौन उत्पीड़न की समस्या निम्न वर्ग से उच्च वर्ग तक फैली है। मैं एक आई0 ए0 एस0 अफसर की 14 साल की बेटी को जानती हूँ, जो हीरोइन बनने के लिए घर से भागी और बलात्कार की शिकार हुई। अब तक मैंने तीन हजार दो सौ लड़कियों को बचाया है। यौन हिंसा की शिकार इन बच्चियों की कहानियाँ दिल–दहलाने वाली हैं। उनका न केवल शारीरिक शोषण किया गया बल्कि दरिंदगी भी की गई। जुल्म करने वाले पुरुष किसी के भाई, किसी के पिता तो किसी के पति थे। यौन उत्पीड़न के बाद लड़कियों को जबरन सैक्स बिजनेस में धकेला जाता है। कुछ को विरोध की वजह से जान गवानी पड़ती है। (दैनिक हिन्दुस्तान दिनांक 25 मई, 2013)

सुनीता कृष्णन की संस्था 'प्रज्जवला' महिला सैक्स वर्करों के करीब पांच हजार बच्चों की पढ़ाई का दायित्व संभाल रही हैं। शासन अपने राजस्व एवं विदेशी मुद्रा के प्रलोभनवश मांस–मदिरा के व्यवसाय को बढ़ावा देता है और इलैक्ट्रानिक माध्यम से अनाचार कदाचार के भड़काऊ दृश्यों को घर–घर पहुंचाता है। इसीलिए समाज में चरित्र का विनाश होता जा रहा है। युवा राष्ट्र के प्राण हैं और चरित्र युवाओं का प्राण है। यदि चरित्र का ह्रास होता है तो राष्ट्र को निष्प्राण होने से बचाया जाना असंभव है। क्या राष्ट्रनायक किंचित विचार करेंगे? ❁❁❁

आपके पत्र

सेवा में,

श्रीमान आचार्य स्वदेश जी (प्रधान)
आर्य प्रतिनिधि सभा उ0 प्र0
5-मीराबाई मार्ग, लखनऊ।

महोदय,

आर्य प्रतिनिधि सभा उ0 प्र0 विगत कई दशक से गलत हाथों में जाने के कारण अपनी रक्षा के लिए आर्यों को पुकार रही थी। आर्यों के गिरते आत्मबल के कारण दुरात्मा सभा पर प्रभावी हो गये। वर्ष 1978 इलाहाबाद के निर्वाचन में कुछ दुरात्माओं ने पदाधिकारियों के रूप में सभा में प्रवेश पा लिया था और धर्मात्मा किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये थे। इसके बाद 1990-91 तथा 2010 के बाद आर्य प्रति-निधि सभा उत्तर प्रदेश शराब सभा के रूप में डूब गयी।

ऐसी विकट घड़ी में सभा को एक ऐसे रक्षक की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था जो दुरात्माओं से सभा की रक्षा कर सके तथा परतंत्रता के जटिल नरकपाश में बद्ध सभा को बन्धनमुक्त करा सके और सभा के आँसू पोंछ सके।

आर्त्त सभा की पुकार-

ईश्वर की प्रेरणा से आर्त्त की पुकार जब आत्मबली के हृदय में टकराती है तो आत्मबली की आत्मा आर्त्त की रक्षा के लिए उदय होती है। आत्मबली के उदय होते ही दुरात्माओं का पतन हो जाता है और वे पलायन कर जाते हैं।

आत्मबली आत्मा का उदय-

यदर्थ क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयं आगतः उक्ति के अनुसार- आचार्य स्वदेश जी के रूप में आर्य प्रतिनिधि सभा उ0 प्र0 के इतिहास में आत्मबली आत्मा का समय पर उदय हुआ तथा आचार्य स्वदेश के उदय होते ही दुरात्माओं ने पलायन करना ही हितकर समझा। आचार्य स्वदेश जी के तप, साहस और आत्मबल की जितनी प्रशंसा की जाये वह अल्प है और उनकी टीम व आर्यों ने जिस उदार भावना से दृढ़तापूर्वक अनार्यों को दूर करने में साथ दिया वह सर्वदा प्रशंसनीय है और वे बधाई के पात्र हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा उ0 प्र0 कई दशक से घुट-घुट कर श्वांस ले रही थी अब वह बंधनमुक्त होकर स्वतंत्रतापूर्वक श्वांस लेगी। आचार्य स्वदेश जी का उदय ईश्वर की प्रेरणा और एक चमत्कार के रूप में गिना जायेगा।

यतो धर्मस्ततो जय-

दिनांक 23-06-2013 का निर्वाचन आर्य प्रतिनिधि सभा उ0 प्र0 के इतिहास में आचार्य

स्वदेश जी का उदय और विजय विशेष घटना के रूप में अंकित किया जायेगा। संगठन के एक सूत्र में बंध कर आर्यों में आत्म चेतना जागृत हुई, पापात्म पराजित हुए–पाप पर पुण्य की असत्य पर सत्य की अधर्म पर धर्म की और अनार्यों पर आर्यों का विजय ध्वज लहराया, यतो धर्मस्ततो जयः का उदाहरण सत्य सिद्ध हुआ।

अद्य जीवामि मा श्वः–

आत्म पराजित पापी आत्मबली के आगे खड़े नहीं रह सकते और कल पापियों का मृत होता है। धर्मात्मा आत्मबली तन त्याग के बाद सदा जीवित रहते हैं और यश प्राप्त करते हैं, पापियों को कोई याद नहीं करता।

कलंक का काला अध्याय समाप्ति की ओर–

आत्मबली आचार्य स्वदेश जी के नेतृत्व में अडिग योद्धा की तरह श्री भुवन तिवारी व श्री जयनारायण अरूण के संघर्ष को विस्मृत नहीं किया जा सकता, के सहयोग से सभा में एक नए युग को सृजन होगा। सर्वत्र प्रकाश की किरण फैलेगी। आर्य प्रतिनिधि सभा उ0 प्र0 अपने पुराने गौरव को प्राप्त करेगी, क्षतिपूर्ति होगी, सभा के हित में उदार और कठोर निर्णय में काले कलंक का अध्याय व अंधकार का युग समाप्त होगा।

नवनिर्वाचित पदाधिकारियों का उदय सभा के भविष्य निर्माण में अग्रसर व सफल होगा।

सभा की सभी सन्तति रूप सम्पत्तियां अवसरवादी, छदमी, चालाक लोगों की कुत्सित चाल पंक में डूबी हुई है, मर्यादा विहीन वैदिक धर्म के हत्यारों से उन्हें मुक्ति मिलेगी। सभा में ऐसे अवांछनीय अवसरवादियों की घुसपैठ पर रोक लगेगी। वैदिक मर्यादाविहीन छद्मी मद्यपी अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु मधुर प्रदर्शन व श्वानवत् आचरण कर सभा को प्रसन्न करने से भी नहीं चूकेंगे। आत्मबली सभा की विवेकवती बुद्धि के आगे सभी धराशायी होंगे तथा सभा पापात्मपराजितों के साथ न कोई समझौता करेगी और न झुकेगी। वैदिक धर्म और सभा के हित साधन तथा सन्ततिरूप सम्पत्तियों की रक्षा होगी एवं शोषणकर्ताओं को अभियान बनकर सभा कुचल देगी तथा सभा का सर्वत्र शोषण बंद होगा।

हार्दिक बधाई

मान्यवर,

आपने अभियान बनकर पापात्मपराजित पतितों से पीड़ित सभा को 23-06-2013 के निर्वाचन के माध्यम से मुक्त कराया है।

अतः मैं आपको सभा का प्रधान निर्वाचित होने पर अपनी ओर से हार्दिक बधाई देता हूं तथा परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि ईश्वर आपको सर्वदा आरोग्य रखे, सभा के गुरूतर उत्तरदायित्व को वहन करने में समर्थ हों और सभा का कार्य अबाधगति से निरन्तर प्रगति पथ की ओर अग्रसर हो। आर्य समाज और महर्षि दयानन्द जन-मन की पहचान बनाने में आप सफल हों और यश के भागी बनें। पुनः हार्दिक बधाई।

भवदीय– **देवेन्द्र शास्त्री**, 777–सर्वप्रिय विहार, दादूबाग के पीछे, कनखल, हरिद्वार।

ऋग्वेद ॥ ओ३म्॥ यजुर्वेद

श्री गुरू विरजानन्द आर्ष गुरूकुल वेदमन्दिर, मथुरा

का

वार्षिक–उत्सव

दिनांक 21, 22 जुलाई 2013

धर्मानुरागी सज्जनो!

आपके अपने गुरूकुल श्री विरजानन्द आर्ष गुरूकुल, वेदमन्दिर, मथुरा का वार्षिक उत्सव आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी और पूर्णिमा तदनुसार दिनांक 21 और 22 जुलाई 2013 दिन रविवार और सोमवार (गुरूपूर्णिमा) को होना निश्चित हुआ है। यह पर्व श्री गुरू विरजानन्द जयन्ती के रूप में मनाया जाता है। नवीन ब्रह्मचारियों की प्रवेश दीक्षा के कार्यक्रम के साथ विद्वानों, उपदेशकों और संन्यासियों के प्रवचन का उत्तम सुयोग रहेगा।

अतः इस अवसर को हाथ से न जाने दें आप सपरिवार आयें। भोजन व्यवस्था गुरूकुल में ही दोनों दिन रहेगी। कार्यक्रम आप सबका ही है अतः इसकी सफलता का दायित्व भी मिलकर ही निभायें।

दिल प्रफुल्लित हो रहा है, आप की ही चाह में।
यह जानकर ही आप आयें, दोगुने उत्साह में।।
मेरे बिना बिगड़ेगा क्या? यह सोचकर रुकना नहीं।
हर कदम का मूल्य होता, जिन्दगी की राह में।।

निवेदकः

प्रधान	मंत्री	कोषाध्यक्ष	अधिष्ठाता
डॉ0 सत्यप्रकाश अग्रवाल	**बृजभूषण अग्रवाल**	**सुरेशचन्द्र विसावर वाले**	**आचार्य स्वदेश**

विशेषः गुरूकुल आने के लिए बस या ट्रेन से उतरने के बाद मसानी चौराहा पर स्थित है। वहाँ से पूर्व की ओर आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग (कच्ची सड़क) पर मात्र 100 पग चलकर गुरूकुल का मुख्य द्वार है।

सामवेद अथर्ववेद

का जीवन जब तक संघर्षों में ही बीता है। वास्तविकता यह है कि आर्यसमाज में संघर्ष का दूसरा नाम ही आचार्य स्वदेश है। इससे पूर्व में जब मथुरा स्थित आर्यसमाज की संस्था वेदमन्दिर पर बाहुबली भूमाफियाओं की नीच दृष्टि पड़ी तब भी पूज्य आचार्य श्री ने अपने अदम्य साहस एवं शौर्य का परिचय देते हुए लम्बे संघर्ष के बाद वेदमन्दिर को मुक्त कराया तदुपरान्त गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन जिसको चलाने की बात तो दूर गुण्डागर्दी के आतंक से उसमें कोई पैर रखने की भी हिम्मत नहीं करता था उस पवित्र संस्था को भी पूज्य आचार्य जी ने अपने शौर्य एवं पराक्रम से गुण्डों से मुक्त कराकर पुनःस्थापित किया है।

अतः कार्यकर्त्ताओं का आचार्य के प्रति पूर्ण विश्वास बेबुनियाद नहीं था क्योंकि वे पहले आचार्य श्री के मजबूत हाथ देख चुके थे। यह भी पूर्ण सत्य है कि श्रद्धेय आचार्य के अतिरिक्त इस चुनावी समर में विरोधियों को मात देने में कोई सफल नहीं होता।

वर्षों से आर्य समाजों पर जाल बिछा कर बैठे लोगों से टकराना कोई साधारण कार्य नहीं था क्योंकि वे तो समाजों को लूट–लूट कर हर तरह की लड़ाई लड़ने को सक्षम थे, और उन्होंने हर हथकण्डे अपनाये भी। उधर आचार्य जी की ठीक स्थिति वहीं थी जो कभी राम और रावण की थी। तुलसीदास जी ने लिखा है– **'रावण रथी विरथ रघुवीरा'** अर्थात् युद्ध कैसे हो रावण के पास तो रथ है परन्तु रघुवीर तो नीचे खड़े हैं। विपक्ष के पास धर्म को छोड़ सब कुछ था, इधर पूज्य आचार्य जी के पास केवल धर्म और ईश्वर में दृढ़ विश्वास। यही कारण था कि वे घोर विषम परिस्थितियों में भी विचलित न होकर संघर्ष के लिए और अधिक कटिबद्ध हुए आचार्य जी ने उनके हर षडयंत्र को अपनी बुद्धि कुशलता से विफल करते हुए हर चुनौती को स्वीकार किया और उन्हें कड़ा जबाब दिया अपने जीवन की परवाह न करते हुये अहर्निश परिश्रम कर आखिर कार्य कर ही दिया जिसकी पूरे प्रदेश की आशा थी।

दृढ़ ईश्वरभक्ति ही उनके पास एक ऐसा अस्त्र है जिसके चलते ही वह बड़े से बड़े कार्यों को सहजता से सम्पन्न कर देते हैं चाहे वह मथुरा का ऐतिहासिक अन्तर्राष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन हो या आर्यप्रतिनिधि सभा का चुनावी समर आचार्य श्री के प्रति लोगों में निष्ठा एवं अटूट विश्वास है। जिसके चलते पहली बार पूरा प्रदेश उनके नेतृत्व को पाकर गौरवान्वित हो रहा है। पूज्य आचार्य जी में वह सब कुछ है जो एक आदर्श नेतृत्व में आवश्यक है। वे केवल व्याकरणादि शास्त्रों के अधिकारी विद्वान् ही नहीं अपितु राष्ट्र, समाज के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वाले माँ भारती के सच्चे सपूत हैं, असमाजिक तत्वों से टकराने के लिए संघर्ष की मिशाल है एवं आर्यसमाज की क्रान्ति के पुरोधा है। पूज्य आचार्य श्री की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि वे सब कुछ होते हुए भी बेहद सरल है, सादगी उनकी पहचान है, उदारता उनका स्वक़ारण है। अभिमान उनके पास नहीं ठहरता लेकिन स्वाभिमान को कभी नहीं छोड़ते। कार्यकर्त्ताओं का दुःख दर्द उनकी अपनी पीड़ा होती है, वे केवल पीड़ा तक ही सीमित नहीं रहते अपितु उसे दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि ऐसे महान व्यक्तित्व को पाकर हर ऋषि भक्त गौरवान्वित है।

आर्यों! बड़े भाग्य से हमें ऐसा नेतृत्व मिला है, अब हम सबका दायित्व है कि पूर्ण निष्ठा के साथ पूज्य आचार्य जी के हाथ मजबूत करने में हम सब सभी स्वार्थों को भुलाकर लग जाए और अपनी पुरानी भूलों का प्रायश्चित कर लें। अब भी हम नहीं चेते तो समय हमें कभी माफ नहीं करेगा। हम यदि जरा भी स्वार्थों के पीछे चले तो निश्चित रूप से वही पाप लगेगा जो महर्षि दयानन्द के भौतिक शरीर को नष्ट करने वाले जगन्नाथ पापी को लगा था। आयें हम सभी मिलकर पूज्य आचार्य जी के नेतृत्व में उठ खड़े हो और गुरूवर विरजानन्द जी महाराज और दयानन्द जी महाराज के पावन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आर्यसमाज को सबल और सशक्त बनायें। सर्व कल्याणी वेदवाणी के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए संकल्प लें। तभी राष्ट्र और समाज का पूर्ण हित होगा और संसार भर के कल्याण के लिए आर्यों के साम्राज्य का विस्तार होगा ईश्वर हम पर कृपा करें। अब हम सब परस्पर फूटरूपी राक्षस के चंगुल से छूटें और एकजुट होकर आर्यसमाज को गति देने में अपना सर्वात्मना सहयोग पूज्य आचार्य श्री को प्रदान कर गुप्त जी के कथन को सार्थक करें।

मानस भवन में आर्य जन जिसकी उतारें आरती।
भगवान भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती।।

आचार्य हरिप्रकाश
गुरुकुल वृन्दावन, मथुरा

'तपोभूमि' जुलाई 2013 R.N.I. No. 2321/57 रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन में
ब्रह्मचारियों के मध्य में पूज्य आचार्य श्री

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2013 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1000/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबा. 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित